यह है चिन्मय की रूपरेखा !

सांस्कृतिक स्वरूप के भावी उत्थान की शुभ्र कल्पना जिन सचेतन कलाकारों की है —उनमें से एक व्यक्ति इस उपन्यास का नायक है।

वह कला का विद्यार्थी, गहन अध्ययन में उसका अटूट विश्वास ! सौन्दर्य का स्रष्टा ही नहीं, उससे पोषित भी, उसका पोषक भी !

वातावरण की विषम तिक्तता में भी जब वह उद्बोधन प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है, तभी जीवन की प्रतिकूल राह में, अनजानी परिस्थितियों की हर बाधा के बावजूद भी वह हारता नहीं।

प्रस्तुत नायक के जय की गौरवगाथा की प्रशस्ति स्पष्ट रूप से सम्भवतः नहीं गायी जा सकी है, लेकिन फिर भी यदि कहीं वह उभर कर उभर आया है, उसका एक मात्र कारण उसकी अपनी विशिष्टता है। वह वहीं है, जिस रूप में प्रस्तुत है, इसलिए यदि वह अत्यन्त साधारण अथवा अत्यन्त असाधारण परिस्थितियों से नहीं गुजर पाया तो उसके लिए वह लज्जित नहीं।

वह अनाथ, रिक्त, जिज्ञासु, सौन्दर्य, स्नेह और चेतना का भूखा। श्रुति है कि साकार, ठोस, परिपूर्ण अनुभूतियों के विभिन्न रूपों का अभिव्यक्ति, असीम ज्ञान का भण्डार, प्यार और दुलार के नाना प्रकार के रूपों से सुसज्जित !

ज्ञान अधूरा, अनन्त समुद्र सामने, 'जय हो' तेरे आशीर्वाद पर उसका अगाध विश्वास!!

सोहम् प्रकाशन के -आगामी आकर्षण-

[१] अखिल भारतीय प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता निर्देशिका (डायरेक्ट्री)

[२] अनादृत (उपन्यास)

[३] ठाकरे के कार्टून

[४] पथ अपरिचित (कहानी संग्रह)

[५] विराट रूप (लघुकथाएं पैरवरस्)

[६] अग्निसाक्षी (उपन्यास)

चिन्मय

-- श्रीसत्य --

[सत्यनारायण गंगादास व्यास]

सोऽहम् प्रकाशन

एफ. ६५, एवेन्यू रोड, बैंगलोर सिटी.

— प्रकाशक —

श्रीमती श्यामारानी

"सोहम् प्रकाशन"

एफ. ९५, एवेन्यू रोड,

बेंगलोर सिटी

शाखा :

थेरेसाविला, ओरलेम,

मलाड, बम्बई.

[मुखपृष्ठ के चित्रकार : श्री रामकुमार]

प्रथम संस्करण

मई १९५६

मूल्य : तीन रुपये

मुद्रक : दि न्यू ग्रेट प्रिन्टर्स, १०[illegible], बाजारगेट स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई १

समर्पण :

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे

—भर्तृहरि.

उस शांत तेज के समक्ष हम प्रणत हैं जो देश
काल की परिधि से परे, असीम तथा
चैतन्य स्वरूप है और केवल
अनुभव द्वारा जाना
जा सकता
है।

श्री दाऊदयाल आचार्य को

आमुख :

जो खड़ी थीं भाग्य की ढाल बन कर,
हिल गयीं वे आज दीवारें पुरानी,
नींव के पत्थर कि डगमग हो रहे,
संतोष का सुख, और थिरता का मनोबल
झुक गया है, ढल गया है, क्योंकि अब तो
आत्म-ध्वनि भी बन परायी गूंजती है –
चाहिए, कुछ चाहिए, मुझको बहुत कुछ चाहिए!

प्रेरणा के सूत्र उलझे,
केन्द्र बन कर घूमती है, चेतना की शक्ति मेरी।
कर्म त्राणा बन रहा है।
श्रेष्ठता है ले रही, उद्भावना का रूप सुन्दर।
ज्ञान मेरी राह है, मंजिल सुनिश्चित।
पर, आज तो मैं रुक गया हूं,
कांपती गति देखता हूं, कह रहा हूं
चाहिए, कुछ चाहिए, मुझको बहुत कुछ चाहिए।

वासना-ऐश्वर्य अथवा कामना किल्लोल
घूमती गति चक्र पर क्रम सिद्धी बन,
मैं हिमालय की तरह मजबूत था,
आ गया भूचाल मेरी रुद्ध करुणा बह रही है
रो रही है
चाहिए, कुछ चाहिए, मुझको बहुत कुछ चाहिए!

प्रगति का है पथ विस्तृत और टेढ़ा,
पार करने की अमर है कामना मेरी,
देखता हूं, दृष्टि के विश्राम में भी दूर
मंजिल के किनारे तुम खड़ी हो रूपसि!
मैं तुम्हारी खोज में था?

स्पष्टीकरण :

प्रस्तुत उपन्यास में वर्णित पात्र-पात्राओं के नाम बदल दिये गये फिर भी लेखक को मालूम है, कि उनमें से अधिकांश अभी तक मौज इसलिए उनके हाथ, इस उपन्यास के पढ़ने पर वे अपने आप को खोज निका उन सबके साथ अप्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप से नाते-रिश्ते भी हैं। है, कि प्रशंसा अथवा आलोचना को क्षमा करने में वे सब समर्थ हैं। फिर भी क्षमा उनसे मांगना आवश्यक है जिन्हें भ्रम हो जाय।

*　　　*　　　*

जिन्हें नीला से, अथवा नीला के प्रतिरूप से साक्षात्कार करने का हासिल हो सका है, उन्हें बधाई देने को आज भी लेखक सौभाग्य समझता है। इसलिए यदि वे अपना संतोष लेखक तक पहुंचा सकें तो स बड़ा भारी उपकार करेंगे।

*　　　*　　　*

चूंकि नायक द्वारा उपन्यास की कथा रेन्ट [पुनर्कथित] की गर इसलिए स्वाभाविक रूप से अन्य पात्रों का वर्णन प्रभाव की अभिव्यक्ति द्व किया गया है। यह भी अस्पष्ट नहीं रहता कि लेखक का प्रयास संक्षिप्त और अधिक सचेत है। फिर भी अन्य पात्रों की वकालत में लेखक इस को ही मान्यता देता है।

*　　　*　　　*

रेन्शन के कारण ही संवादों की भाषा एक-प्रवाह-सा रही है। अन्य पात्रों की भाषाओं पर अस्वाभाविकता का आरोप नहीं जा सकता।

*　　　*　　　*

मेरे बुजुर्ग और परम प्रिय, बीकानेर के मित्र श्री दाऊदयाल द्वारा इसे न समझ पाने के असमर्थतासूचक पत्र के कारण इसे दुबारा लिख प्राप्त हुआ है। मैंने कोशिश की है कि अपने तईं इसमें कमी हो न लेकिन इसके अतिरिक्त भी कमियां रह गई हों, तो कहना पड़ेगा, कि इसमें दोष नहीं है।

परिचय इतना !

अनेक लोगों के विभिन्न मत हैं। 'सत्य अत्यधिक प्रतिभा-सम्पन्न और परिश्रमशील हैं' ऐसा कहनेवाले लोग भी हैं और ऐसे लोगों की भी कमी नहीं, जिनकी दृष्टि में वह घनघोर आलसी और लापरवाह है। इसे मस्ती और उदारता की संज्ञा देने वाले भी संसार में हैं। कुछ लोगों का कहना है, कि इसकी शैली में रस है—गहराई है। विपरीत मत यह है, कि टाइप-राइटर पर लिखने का धुरन्धर अभ्यासी टाइपिस्ट से अधिक कुछ हो ही नहीं सकता। एक साहब की राय में 'सत्य' के दुस्साहस की सीमा नहीं है। दूसरे का प्रतिवाद है, कि ऐसे आदमी ही एक-न-एक दिन धूमकेतु की तरह चमकते हैं।

अनेकानेक कागज पत्रों, कटिंगों के ढेर और फाइलों के अम्बार में व्यस्त इस पुस्तक के लेखक को इन सबकी असारता समझाने के विपुल प्रयत्न भी हुए हैं। लेकिन साधारणतया यही जवाब मिलता है, कि—सरस्वती की इस विधि से की जानेवाली पूजा की महिमा अपरम्पार है।

उपन्यास, कहानियाँ, परिकल्प, सामयिक लेख, संवादपत्र, रिपोर्टाज, इण्टरव्यूज, रेडियो नाटक, इत्यादि, इत्यादि पचास तरह से कलम पर साथ करने की प्रवृत्ति की निन्दा काफी हो चुकी है। लेकिन लगता है २४ वर्षों की आयु तक किसी एक चीज को पसन्द कर लेना इस लेखक के लिए सम्भव नहीं हो सका है। इसलिए कहनेवाले कहें—उसकी प्रतिभा चतुर्दिक है।

—विजय

एक :

सिंहावलोकन करता हूं, तो व्यतीत जीवन की संक्षिप्तता साकार हो
है। फिर भी जानता हूं कि इस अल्पता के प्रति संचित गौरव आज भी अ
अक्षुण्ण बना हुआ है।

गत इतिहास की कथा जहां विराम लेती है, वहां [illegible] स्पर्श हैं
आज भी पीड़ा होती है।

इस पीड़ा से मुझे प्यार है।

लीला अब इस संसार में नहीं है। उसकी स्मृति मात्र का ही मैं वारि
इस थाती का मोल करने एक बार मेरे बाजार खड़ा हुआ था, उस दिन
की अकिंचनता का जो बोध हुआ था, उससे समस्त संचित शक्ति का आध
कांप सा गया। अन्तर्दृष्टि की सिद्धि पर केन्द्रित निष्ठा पिघल गयी। वा
वास्तविकता अनावरण हो गयी। उस दिन जीवन की सम्पूर्ण भूमिका
पर लगाकर हार गया था।

इसलिए की इस पराजय से मौलिक प्रेरणा की [illegible] स्वीकार कर ली
से। इतार्थता अशेष नहीं रहेगी, यही सोचकर, पीछे की ओर मुड़ कर देख

आज से दो वर्ष पूर्व। बम्बई के एक भाड़-भरे बाजार में [illegible]
था। भाड़ में चलनेवाला अधिक सावधानी के साथ चलता है साथ ही
असमर्थता [illegible] होता है।

[illegible] । [illegible] [illegible] होंगे। [illegible]-[illegible]
[illegible], [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] और छोटे-मोटे [illegible] से [illegible] हुआ [illegible]। [illegible]
[illegible], [illegible] [illegible]। [illegible] ही [illegible]
से पुते हुए, [illegible], का [illegible] [illegible] हो [illegible] है।

फुटपाथ के समीप धन, सम्पत्ति, अलकारों से बोझिल जो दुकानें हैं, वहां की व्यस्तता अत्यन्त तीव्रगामी है। अजस्र भीड़ मे बहनेवाला व्यक्ति देखने के लिए रुक नहीं पाता, और उनकी क्रियाशीलता एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं कर पाती।

फुटपाथ के दूसरे किनारे की चौड़ी सडक पर कारें भागती चली जा रही है। दुमंजिली बसें दौड़ रही हैं। ट्रामों की घर्राहट एक खास अदाज के साथ, स्वर के उतार-चढ़ाव के साथ दौड़ती-दौड़ती, अपने स्टोपेज पर रुक जाती है। उतरनेवाले फुर्ति से उतरते हैं चढ़नेवालों में भी स्फूर्ति है। एक मिनट के अल्पांश में ही मुसाफिरों का आदान-प्रदान कर, वह फिर घर्राकर, अपना स्वर तेज करके भागती हुई चली जाती है।

मैं भीड़ मे बहा जा रहा हू।

बस की प्रतीक्षा करनेवाली लम्बी लाइन अचल है। जो पीछे खड़े हैं, वे बार-बार मुड़ कर बस के आगमन से अवगत होना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकार की चंचलता दृष्टिगोचर नहीं होती, और मैं भीड़ के निरन्तर क्रियाशील प्रवाह से आगे बढ़ जाता हू।

बहती चली जा रही इस धारा मे निजता का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर नहीं मिल पाता। अपने अतिरिक्त चारों ओर एकत्रित जीवन के इन प्रतीकों को मैं सिर ऊंचा करके देखता हू। बहाव मे बहे जाना, यही जीवनसार सा लगता है। इसके अतिरिक्त शेष कुछ नही।

अर्जुन ने कृष्ण से एक बार पूछा था, "प्रभो! विराट रूप देखना चाहता हू।" समर्थ कृष्ण तब सम्भवत उस जिज्ञासु की विस्फारित आंखों के सामने इसी तरह भीड़ बन कर छा गये थे और अर्जुन ने आखें मूद ली थी। कहा होगा, मेरा अस्तित्व कहां? मै कहां? मैं अत्यन्त स्वल्प, अत्यन्त तुच्छ! इस भीड़ के परे मुझे अपने आपको ढूढने दो! तब विराट के एकत्रित स्वरूप से अलग नत-नयनों से उसने अपना रूप देखा होगा। वही सत्य था, उसी की जीत हुई थी।

संयोजित इस भीड़ में मैं अपने को ढूढ रहा हूं, अपनों को ढूढ रहा हूं। पलायन प्रवाह निरोहित नहीं होता, और उखड़े हुए कदमो के साथ अज्ञात दिशा की ओर मैं भी अज्ञान सा बहा चला जा रहा हू।

मैंने अपने कदम सँभाले। रुक गया। किसी सफेदपोश सज्जन से टक
गया। उन्होंने फुर्ति से अपनी जेबों पर हाथ फेरा, उसमें पड़े अतुल धन
सुरक्षा से आश्वस्त होकर कुछ नम्रता के साथ, कुछ झुंझलाहट के साथ फुसफुस
"एक्सक्यूज मी, माफ कीजिए।"

बहते चले जा रहे इस तिनके को देखने का पल भर के लिए अव
मिल गया। आपस में टकरा जाने के गम्भीर अपराध में गलती किसकी थी, ट
मैं नहीं कह सकता। लेकिन उनकी विनम्रता के सामने माफी माँगूँ, यह ठ
नहीं लगा। तिनका अपनी स्थिरता से भिन्न होकर बह गया।

बम्बई-स्टेशनरी-मार्ट से ड्राइंग के लिए कागजों की कुछ शीटें ले
क्राफर्ड मार्केट के अपने तत्कालीन घर की ओर जा रहा था। भीड़-भरे
बाजार में, बहते हुए इस प्रवाह में मन ही संकुचित नहीं हो गया था, कागज
शीटें भी मुड़ गयी थीं। बार-बार याद आता, 'मैं कलाकार हूँ. आने
जमाने का स्वप्न-द्रष्टा। आज की तपस्या, आज की साधना, कल वरदान ि
होगी।' यज्ञ की पूर्णाहुति की अंतिम स्वाहा के बारे में बार-बार चिन्तित ह
डर जाता। हर स्थितिमें विराट भीड़ प्रस्तुत हो जाती, और उसमें अपने
खोज निकालना मुझे असंभव सा लगता। इसलिए चारों ओर आँखें पसार
अपने किसी साथी को ढूँढ पाने के लिए असीम व्याकुलता महसूस करता।

भीड़ के रेले में पैर उखड़ गये, और मैं फिर आगे बढ़ गया
किसी फिल्म-कम्पनी का आफिस है। बाहर बहुत से फोटो लगे हुए हैं।
वे सांपों की तरह भीड़ उस ओर सरक गयी है, इसलिए कुछ जगह
बनी है। अपने अस्तित्व का क्षणिक बोध हुआ, और मैं तेजी के साथ अ
रास्ता बनाने लगा।

फिर किसी से टकरा गया।

सामने एक सुन्दरी है, उसने बुरा नहीं माना। झुक कर, तिरछी न
से देखकर मुस्करा दिया।

उस मुस्कराहट की क्षमा असीम उदार थी। जिसमें मेरे जैसा नि
भाषी तिरस्कार का भी पात्र नहीं हो सकता।

तैर कर चारों ओर फैल जाती—कि कौन है अपना, जो सम्बोधन का मर्म जानता हो, इस जीवन की ललक को सार्थक कर सकता हो ?

सुना है, आन्तरिक मन की घनिष्ठ कल्पना कभी-कभी साकार स्वरूप भी धारण कर लेती है। लेकिन ऐसा यहां, इस समय, प्रस्तुत अवस्था में भी हो सकता है, विश्वास नहीं होता !

तो इस भीड़ में परिचित और स्वजन कोई नहीं है ? फिर निजता का बोध किस काम का ? भीड़ में बहे जाना अधिक कुरेदेगा नहीं ?

लेकिन समर्पण से पहले की एक अगाध अतृप्त आकांक्षा है कि कोई अपना मिले, कोई अजानुभुजाओं से ऊपर उठाकर मेरे पिघलते चले जा रहे व्यक्तित्व की रक्षा करे, ताकि इस बहते चले जा रहे जनरव से ऊपर उठ सकूं। असहाय एकान्त के अभिशाप से दुखी होकर ऐसा विचार करूं, ऐसी कल्पना करूं, तो इस क्षण को कोई अप्रलोभनीय न कहे।

किसी को अपना कह कर खोज नहीं पाता, तो यह मेरी दीनता है, लाचारी है, असमर्थता है। लेकिन क्या ऐसा भी कोई नहीं है जो इस भीड़ में से मुझे पुकारे, 'राम ! यहां आओ, मैं यहां हूं।' जैसे एकान्तवासी राम को जनरव अपने आप घेर लेता था। वे कितनों को जानते थे ? लेकिन उनके लिए आंसू बहानेवालों की संख्या क्या आज तक गणित में समा सकी है ?

राम का पराक्रम था कि द्यु-लोकों का अन्तर, प्रेम की परिधियों में समा जाता था। मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है।

जो अपने आप में सम्पन्न नहीं, जो स्वयं रिक्त है, वह प्राप्त करने योग्य नहीं बल्कि वह तो प्राप्य को सजोने की सामर्थ्य के प्रति भी शंकायुक्त है।

उस दिन सोच रहा था, जिन्दगी के १८ वर्षों तक हाथ पसारे ही चलता रहा। कुछ पा सका, यह नहीं कह सकता। यदि कुछ पाना होता, तो अब तक बहुत कुछ पा लेता।

—और पा सकता तो आज जो यह तुच्छता, रिक्तता और हीनता महसूस कर रहा हूं, इस पाप से मुक्त होता।

—और मुक्त होता मेरे भावुक-चित्रकार का हृदय ! शुद्ध रूप में सौन्दर्य को देख सकता, और सकता। दे सकता, तो प्रतिदान में बहुत कुछ पा भी सकता।

—सौन्दर्य में अपने व्यक्तित्व को निखार सकता, तो इस विराट जनरव के ऊपर स्थिर रह कर प्रस्तुत भयकर एकाकी प्रवंचना से मुक्त हो जाता।

—जीवन की सार्थकता की किसी कल्पना पर विश्वास का स्थिर महल संजोया जा सकता। भूत, वर्तमान, और भविष्य के इतिहास के किसी अध्याय पर अंगुलि रख कर उस पर गौरव कर सकता, तो इस भीड़ में भी अकेला नहीं रहता। अकेला होता भी, तो तुच्छ नहीं होता।

लेकिन अतीत कुछ भी नहीं। वर्तमान प्रस्तुत है, जहा भविष्य की आशाएं तिरोहित हो गयी हैं।

उस दिन भी ठीक आज की ही तरह पीछे मुड़ कर गत-जीवन का मूल्यांकन और आधार ढूंढने में प्रयत्नशील था।

स्मृति के केन्द्रस्थल में जो चित्र उभरता है, वह एक बालक का है। अनाथ अरक्षित, दया का पात्र। अनाथालय के अध्यापकों का आज्ञानुवर्ती। भीड़ में बहता चला जा रहा तिनका। एक दिन रुका तो मालूम हुआ कि मैट्रिक पास कर गया हूं। युवक हो गया हूं। अपने बारे में अब स्वयं जिम्मेदार हूं। अपने पैरों पर खड़े होकर, खुद की आंखों से, बिना किसी चश्मे के संसार देखने की महंगी आजादी मुझे मिल गयी है। लेकिन इस आजादी में असहायता का एक ही रंग अधिकाधिक गहरा होकर काला होता चला जा रहा है।

जैसे ऊपर से कोई और रंग पोत दिया गया हो, परिवर्तन मौलिक स्वरूप को प्रभावित नहीं कर सका हो, स्कूल और आर्डर से भरा हुआ। 'अनाथालय से आ रहा हूं,' यह बताने पर, तथा उनके इम्तिहान में पास हो जाने के कारण, स्कूल में भरती कर लिया गया। जैसे किसी भद्दे चित्र को सुनहले फ्रेम में टांग दिया गया हो।

चित्र चाहे जैसा रहा हो, फ्रेम की कीमत भी तो होती है।

जैसे ही सरदार ने लाइब्रेरी की पुस्तकों की जिम्मेदारी रखने का काम मेरे सुपुर्द कर दिया। मैंने कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार किया। दो वर्षों से वहां यह काम करता रहा हूं। लेकिन कभी किसी ने किसी तरह की शिकायत नहीं की। सरदार साहब कहते थे 'लड़का बड़ा मेहनती है।' मैं नम्रता से झुक जाता। सोचता, इसके अतिरिक्त यह मान क्या हो सकता है? जवाब नहीं मिलता, और मैं खामोश हो जाता।

तैर कर चारों ओर फैल जाती—कि कौन है अपना, जो सम्बोधन का मर्म जानता हो, इस जीवन की ललक को सार्थक कर सकता हो ?

सुना है, आन्तरिक मन की घनिष्ठ कल्पना कभी-कभी साकार स्वरूप भी धारण कर लेती है। लेकिन ऐसा यहां, इस समय, प्रस्तुत अवस्था में भी हो सकता है, विश्वास नहीं होता !

तो इस भीड़ में परिचित और स्वजन कोई नहीं है ? फिर निजता का बोध किस काम का ? भीड़ में बहे जाना अधिक कुरेदेगा नहीं ?

लेकिन समर्पण से पहले की एक अगाध अतृप्त आकांक्षा है कि कोई अपना मिले, कोई अजानुभुजाओं में ऊपर उठाकर मेरे पिघलते चले जा रहे व्यक्तित्व की रक्षा करे, ताकि इस बहते चले जा रहे जनरव से ऊपर उठ सकूं। असहाय एकान्त के अभिशाप से दुखी होकर ऐसा विचार करूं, ऐसी कल्पना करूं, तो इस क्षण को कोई अप्रलोभनीय न कहे।

किसी को अपना कह कर खोज नहीं पाता, तो यह मेरी दीनता है, लाचारी है, असमर्थता है। लेकिन क्या ऐसा भी कोई नहीं है जो इस भीड़ में से मुझे पुकारे, 'राम ! यहां आओ, मैं यहां हूं।' जैसे एकान्तवासी राम को जनरव अपने आप घेर लेता था। वे कितनों को जानते थे ? लेकिन उनके लिए आंसू बहानेवालों की संख्या क्या आज तक गणित में समा सकी है ?

राम का पराक्रम था कि द्यु-लोकों का अन्तर, प्रेम की परिधियों में समा जाता था। मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है।

जो अपने आप में सम्पन्न नहीं, जो स्वयं रिक्त है, वह प्राप्त करने योग्य नहीं बल्कि वह तो प्राप्य को सजाने की सामर्थ्य के प्रति भी शंकायुक्त है।

उस दिन सोच रहा था, जिन्दगी के १८ वर्षों तक हाथ पसारे ही चलता रहा। कुछ पा सका, यह नहीं कह सकता। यदि कुछ पाना होता, तो अब तक बहुत कुछ पा लेता।

—और पा सकता तो आज जो यह तुच्छता, रिक्तता और हीनता महसूस कर रहा हूं, उस पाप से मुक्त होता।

—और मुक्त होता मेरा भावुक-चित्रकार सा हृदय ! गूढ़ रूप में सौन्दर्य को देख सकता, आंक सकता। दे सकता, तो प्रतिदान में बहुत कुछ पा भी सकता।

—सौन्दर्य से अपने व्यक्तित्व को निखार सकता, तो इस विराट जनरव के ऊपर स्थिर रह कर प्रस्तुत भयंकर एकाकी प्रवंचना से मुक्त हो जाता।

—जीवन की सार्थकता की किसी कल्पना पर विश्वास का स्थिर महल संजोया जा सकता। भूत, वर्तमान, और भविष्य के इतिहास के किसी अध्याय पर अंगुलि रख कर उस पर गौरव कर सकता, तो इस भीड़ में भी अकेला नहीं रहता। अकेला होता भी, तो तुच्छ नहीं होता।

लेकिन अतीत कुछ भी नहीं। वर्तमान प्रस्तुत है, जहां भविष्य की आशाएं तिरोहित हो गयी हैं।

उस दिन भी ठीक आज की ही तरह पीछे मुड़ कर गत-जीवन का मूल्यांकन और आधार ढूंढने में प्रयत्नशील था।

स्मृति के केन्द्रस्थल में जो चित्र उभरता है, वह एक बालक का है। अनाथ अरक्षित, दया का पात्र। अनाथालय के अध्यापकों का आज्ञानुवर्ती। भीड़ में बहता चला जा रहा तिनका। एक दिन रुका तो मालूम हुआ कि मैट्रिक पास कर गया हूं। युवक हो गया हूं। अपने बारेमें अब स्वयं जिम्मेदार हूं। अपने पैरों पर खड़े होकर, खुद की आंखों से, बिना किसी चश्मे के संसार देखने की महंगी आजादी मुझे मिल गयी है। लेकिन इस आजादी में असहायता का एक ही रंग अधिकाधिक गहरा होकर काला होता चला जा रहा है।

जैसे ऊपर से कोई और रंग पोत दिया गया हो, परिवर्तन मौलिक स्वरूप को प्रभावित नहीं कर सका हो, स्कूल आफ आर्ट्स में भर्ती हुआ। 'अनाथालय से आ रहा हूं,' यह बताने पर, तथा उनके इम्तिहान में पास हो जाने के कारण, स्कूल में भर्ती कर लिया गया। जैसे किसी भद्दे चित्र को सुनहले फ्रेम में टांग दिया गया हो।

चित्र चाहे कैसा रहा हो, फ्रेम की कीमत भी तो होती है।

[illegible] पी. सरकार ने लाइब्रेरी की पुस्तकों की जिल्दसाजी करने का काम मेरे सुपुर्द कर दिया। मैंने तल्लीनता पूर्वक स्वीकार किया। दो वर्षों से यह काम करता रहा हूं। लेकिन कभी किसी ने किसी तरह की शिकायत नहीं की। सरकार साहब कहते थे 'काम बड़ा मेहनती है।' मैं नम्रता से झुक सा जाता। सोचता, इसके अतिरिक्त यह काम क्या हो सकता है? उत्तर नहीं मिलता, और मैं उदासीन हो जाता।

उस दिन बाहर बैठा मूर्तियों के स्केचेज़ बना रहा था। तभी सरकार साहब आ गये। पूछा, क्लास में नहीं गये?

–आज तो स्पेश्यल–क्लासेज हैं।

–तो तुम अटेण्ड नहीं करोगे?

जवाब नहीं दिया। सरकार साहब समझ गये, स्पेश्यल–क्लासेज की ६ आने फीस है। यह भी किसी के लिए दुर्लभ हो सकती है, एकाएक यह तथ्य उनकी समझ मे आया। कहा, आओ मेरे साथ।

मैंने कापी संभाली। पेंसिल जेब में रखी। उनके पीछे–पीछे चलने लगा।

बड़े हाल मे रोशनी काफी थी। इसलिए पर्दे लगाने पर भी अन्धकार नहीं था। सरकार साहब के साथ अन्दर चला गया। पर्दे के पास ही एक महिला खड़ी थी। सरकार साहब को उसने नमस्कार किया। मैंने विनीत नजरों से उसे देखा।

रेशमी साड़ी में उसकी दुबली पतली काया सारे वातावरण मे भिन्न सी लगी। रंग उसका गोरा था। चेहरे पर प्रसन्नता की मुसकराहट। धनुषाकार भौंहें। पतले रक्तिम होंठ। ललाट पर छोटी सी काली बिन्दी। जूड़े में लगा हुआ बड़ा सा गुलाब का फूल मुरझाकर एक ओर झुक सा गया था। शायद उसकी समस्त कांति और सौन्दर्य के सामने परास्त हो गया हो। अभिवादन के लिए सम्मिलित हाथों में पतली चूड़ियां कांप रहीं थीं। एक हाथ में बंधी हुई छोटी सी घड़ी, नीचे की ओर लटक गयी थी।

सरकार साहब ने पूछा, डेमोंस्ट्रेटर नहीं आए?

उसने एकबारगी हाल की ओर नजर घुमायी। सारे विद्यार्थी अपनी डेस्कों पर झुके हुए बोर्डों को संभाले शांत बैठे, उस महिला की खोजती हुई नजरों का समर्थन कर रहे थे। उसने जवाब दिया, अभी तक तो नहीं आए।

सरकार साहब ने अंग्रेजी में कहा, यह विद्यार्थी भी यहीं बैठेगा। डेमों-स्ट्रेटर से कह देना, मैंने भेजा है।

प्रत्युत्तर मे उसने सिर हिलाया। अर्थ था, ठीक है।

सरकार साहब चले गए।

मैं दरिद्र हूं। ६ आने खर्च करने मे भी असमर्थ, यह तथ्य मानो साकार होकर उसे छू गया। देखा, उपस्थित छात्र भी अप्रभावित नहीं हैं।

मैं उस अनिंद्य सुन्दरी को देखता ही रह गया।

सरकार साहब की विशेष कृपा को उस मॉडेल की सहज स्वीकृति जैसे मिल गयी हो। रंगीन परोंवाली तितली की तरह मुसकराहट उसके चेहरे पर, पर फैला कर उड़ गयी। मैं सम्मोहित सा, ठगा हुआ सा, वहीं खड़ा रह गया। तब उसने कहा, गो एण्ड सिट।

मुझे असमर्थता, अज्ञानता का भान हुआ। कापी पेंसिल सँभालकर, एक खाली सीट पर, सबसे पीछे बैठ गया।

देखता रहा, उस मॉडेल की ओर, जो मेरी ओर नहीं देख रही थी।

डेमोंस्ट्रेटर महोदय आ गए। प्रविष्ट विद्यार्थियों के पास से उन्होंने प्रवेश टिकट ले लिए। मेरे पास भी आए, तभी उसने आकर, जैसे अचानक याद आ गया हो, कहा, सरकार साहब आए थे। उन्होंने इनके बारे में कहा है कि इन्हें बैठने दिया जाय।

डेमोंस्ट्रेटर ने मुझसे कुछ भी नहीं पूछा। वे दोनों साथ ही साथ सामने सजाए हुए तख्ते पर चले गये। डेमोंस्ट्रेटर महोदय तख्ते से नीचे उतर आये। सामने बैठे विद्यार्थियों को प्रारम्भिक निर्देशन देने लगे।

वह महिला तख्ते पर खड़ी हो गयी। लगा कि जैसे वह सारी क्लास को तौलने का प्रयत्न कर रही हो। एक ही क्षण के पश्चात रेशमी साड़ी नीचे सरकने लगी। वस्त्र पास ही एकत्रित हो गये। उसका गोरा शरीर अनावरण हो गया।

नग्न !

मैं ऊपर से नीचे तक सिहर सा गया।

पहली बार ज्ञानोदय हुआ—यह सब है।

मैं एकटक उसकी ओर देखता रहा। डेमोंस्ट्रेटर की निगाहों से सावधान हुआ तो स्केच बनाने में तल्लीन हो गया। सारी जड़ भावनाएँ पेंसिल से खींची आड़ी-तिरछी रेखाओं में जड़ ही बनी रहीं। जिस सीमा तक जान गया था। सीख गया था उससे अतिरिक्त अधिक नहीं जाना जा सकता। नहीं जानना चाहिए, यह समझ गया।

लेकिन फिर भी डेमो स्ट्रेटर की आवाज का अनुसरण करती हुई मेरी निगाहें जब भी उस जीवित मोडेल की तरफ झुक जातीं, तो लगता कि दृष्टि की स्थिरता में परिवर्तन असंभव है। लेकिन पल्क गिरते, और मैं झुक जाता। कापी में पेंसिल दौड़ने लगती। एकाग्र चित्त से पेंसिल की सरोहट सुनता।

बाद में मालूम हुआ, उसका नाम नीला है।

हाल में बाहर दो एक बार मुझे मिली थी। मैंने चकित भ्रमित से नमस्कार किए। प्रत्युत्तर में वह मुसकराई। कुछ क्षणों के पश्चात सब कुछ विलीन हो गया।

लेकिन शून्य सी स्मृति, अनुपस्थिति में उपस्थिति हो जाती। इस शून्य की कोई भूमिका नहीं थी, इसके अतिरिक्त कि एक स्त्री, एक अनावरण नारी के सम्मुख मैं मुग्ध नेत्रों से देख रहा हूं।

कल्पना करता, कि एक दिन एक ओइल-पेंटिंग बनाऊंगा। बहुत बड़ी-बहुत बड़ी इतनी बड़ी, जितनी कि सारी स्कूल है। फिर उसे चुपचाप देखा करूंगा।

भीड़ में बहा जा रहा हूं। अतीत की संक्षिप्त कथा में वर्तमान जाने कब और कैसे हावी हो गया।

तभी ऊपर के तल्ले की किसी सद्-गृहिणी ने तुलसी में जल सींचा, और उसकी कुछ बूंदे फिसलती हुई, मेरे ललाट को छूती हुई गालों तक सरक आईं।

कितने साफ सुथरे, टिप-टोप विद्यार्थी स्कूल में आते हैं। उनकी सफेदी और उज्ज्वलता से दब सा जाता हूं। आगे की बेंच पर बैठने का साहस नहीं होता। जानता हूं कि पिछली सीट पर बैठने पर भला साहब की पतली आवाज सुनाई नहीं देती और सामने का मोडेल कुछ छोटा दिखाई देता है। लेकिन उन श्वेत-बगुलों के बीच काग की तरह बैठने लज्जा सी महसूस होती है।

इसलिए इस सत्पात्रा के प्रति अपरिमित जिज्ञासा होते हुए भी मैं उसे कभी नजदीक से नहीं देख सका।

रास्ता पार करने के लिए सड़क पर जो रेखाएं पसरी हुई हैं, उनमें से होकर गुजर रहा था, कि किसी का हाथ आगे बढ़ आया, मजबूती से पकड़ कर मुझे

पीछे की ओर ढकेल ले गया। नजर उठाकर सामने देखा, विशालकाय बस का ब्रेक चीत्कार भर रहा था। ड्राइवर ने कांच में से मुंह निकाल कर मेरी असावधानी की निन्दा की। उसे नहीं सुन सका। मुड़कर, अपने रक्षक की ओर देखा, नीला थी। उसने हाथ छोड़ दिया।

कांप सा गया। जैसे अर्जुन के सामने का विराट रूप अस्त हो गया हो और उसका सखा मात्र सामने उपस्थित हो। ऐसी कल्पना करते हुए, कुछ इस तरह जड़-सा हो गया कि उसे नमस्कार तक नहीं कर सका। उसी ने हंस कर कहा, इस तरह से आंख मूंदकर चलोगे, तो आर्टिस्ट ही नहीं, फिलोसफर भी बन जाओगे। अचरज नहीं, यदि जल्दी ही निर्वाण प्राप्त हो जाय।

यह भाषा किसी मोडेल की नहीं हो सकती। अपनी अल्पता का ऐसा ज्वर सा आया, कि जी किया कि जमीन फट जाय, और उसमें समा जाऊं। जिसका चित्र कल्पना में निहारता रहा, वह मेरी हैसीयत से बाहर की चीज है, यह जानकर करुण-सा हो आया।

साधारण शिष्टाचार के नाते 'धन्यवाद' तक नहीं कह सका।

कारों की कतार समाप्त हुई। हम दोनों ने साथ ही रास्ता पार किया।

उसने पूछा, स्कूल जा रहे हो?

–नहीं।

–आज स्कूल बंद है?

–हां।

–घर किस तरफ है?

–मारकेट मार्केट के पास।

–मार्केट मार्केट के पास! कहां?

–नूर बिल्डिंग में। तीसरे तल्ले।

–पिताजी क्या करते हैं?

हंसी आ गयी पर माधुर्यता विहीन। कहा, मां-बाप कोई नहीं। पेइंग-गेस्ट हूं। एक सज्जन हैं, तल्ले में, दया करके उन्होंने रख लिया है।

वह चुप हो गयी। साथ साथ चलते रहे।

फिर अविराम मौन। पूछा, चाय पीयोगे?

कहा, नहीं।

प्रथम निमंत्रण अस्वीकृत करना सहज नहीं। प्रयत्न करके ऐसा किया हो, सो बात भी नहीं। अचानक यही मुंह से निकल गया।

डरते-डरते मैंने उसकी ओर देखा। प्रस्तुत खामोशी से भयभीत, चाहता था कि उसके मौन मे भी कुछ अर्थ निकाल सकूं। लेकिन वह निर्विकार थी। चेहरे पर वही प्रसन्नता, वही सौन्दर्य, वही मर्यादा, वही गांभीर्य। उसने अपने हाथ का बोझ दूसरे हाथ में बदल लिया। मैंने विनती की, लाइए मुझे दे दीजिए, पहुचा दू।

सामान दे दिया।

फिर खामोशी, साथ साथ चलने लगा।

पूछा —घर तक पहुचा दोगे?

कहा —पहुचा दूगा।

–घर जाने मे देर तो नहीं होगी?

–नहीं।

सामान अधिक नहीं था। चाहती तो वह स्वयं उठा सकती थी। बल्कि ले ही जा रही थी। शायद कुछ दिक्कत होती। मै साथ हू, दिक्कत को कम कर सकता हू। करूगा।

एक हाथ मे ड्राइंग का सामान संभाले, और दूसरे हाथ में कपड़ों का बंडल थामे चुपचाप चला जा रहा हू। बोरीबंदर पर ई रूट के बस-स्टेण्ड पर खड़े होने का उसने संकेत किया। यंत्र-संचालित सा मैं उसके पास जाकर 'क्यू' मे खड़ा हो गया।

अपमान जिन्दगी मे बहुत हुआ है। आदी हो गया हूं, इसलिए अधिक अखरता नहीं। कितना होना शेष है, इसका हिसाब मेरे पास नहीं। लेकिन अपमान की इस कल्पना मे मैं बुरी तरह संकुचित सा हो उठा, जब कि बस मे बैठने पर इस मोडेल, इस नीला द्वारा मेरा टिकट खरीदा जायगा। उस समय मै चुपचाप नजर नीची किये बैठा रहूगा। शायद एक असह्य दृष्टि से यह नीला मेरी ओर देखेगी। मै बर्दाश्त कर लूंगा।

लेकिन इससे भी कुछ अधिक हो सकता है। बस का कंडेक्टर मेरे पास ही आकर खड़ा हो सकता है। टिकट में छेद करने वाली मशीन की स्प्रिंग को अपनी आदत के अनुसार बजाते हुए, पैसों के लिये उसने हाथ फैलाया।

मेरी नजर, बस में बैठे सारे यात्रियों को देख गयी। टिकट के पैसे देने में उपस्थित सारे व्यक्ति समर्थ थे। एक मैं ही था, जिसकी आँखें झुक गयीं। नीला ने पर्स खोल कर कण्डक्टर को पैसे दे दिये, दो टिकट लिये।

बस-ड्राइवर गीयर पर गीयर बदल रहा है। बस तेजी के साथ भागी जा रही है। खिड़की के पास बैठे लोग बाहर की ओर देख रहे हैं। उनकी नजरों में फैला हुआ, भागता हुआ, सौन्दर्य तैर रहा है। लेकिन मेरी नजर में बस का फर्श है, जहां पतली लकड़ी की पटरियां समानान्तर पर स्थिर हैं। पटरियों के बीच में फंसा हुआ गर्द स्पष्ट है। फालतू के टिकट बस के धक्कों के सहारे इधर उधर लुढ़क रहे हैं। शायद छः-सात स्टॉपेज आए। इससे भी अधिक आए होंगे। बहुत से सह-यात्री उतरे। कई आये। मलाबार-हिल के नीचे और चौपाटी से कुछ दूर, जहां एक पीले रंग के मकान के सामने बस खड़ी होती है, वहीं मैं नीला के साथ उतर गया। अपने साथ आने का संकेत करके, मेरे अनुगमन पर अतुलनीय विश्वास करते हुए वह आगे बढ़ गयी। रास्ता क्रॉस करके, उसके साथ-साथ सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। कुछ चौकन्ना सा, कुछ घबराया हुआ-सा, उस एकान्त-स्त्री के अधिकृत आदेशों का पालन करता रहा।

पहले तल्ले पर उसने अपने रूम का दरवाजा खोला। कमरा अधिक लम्बा चौड़ा नहीं था, लेकिन ऊंचाई काफी से अधिक थी। एक ओर साफ-सुथरा पलंग बिछा हुआ था। पलंग के समीप छोटी-सी एक टेबल पर कुछ पुस्तकें पड़ी थीं। टेबल के पास ही की तिछीं आलमारी पर एलार्म टिक-टिक कर रही थी। मैं खामोश था, वह मौन। बाहर दोपहर की तेज हवा बह रही थी। घनिष्ठ वातावरण में घड़ी की आवाज दोनों के मौन के बावजूद भी आश्वासन बनी हुई थी।

एक कोने में स्टोव चमक रहा था। उसके पास ही रैक में करीने से सजी हुई कुछ शीशियां और लिप्टन चाय के डिब्बे थे; सम्भवतः यह रसोई का सामान था। सारा कमरा साफ सुथरा, और सजा हुआ। जैसे कुल मिला कर कह रहा हो, 'यह सब एक स्त्री का है; यह सब नीला का है।' उस-कमरा उसके

व्यक्तित्व की मुखरित अभिव्यक्ति बन गया था। एक क्षण के लिए अनजाने सकोच और लज्जा से पराभूत हो गया। उसने पलग पर सारा सामान रख दिया। दरवाजे के पास पड़ी कुर्सी को खींचकर, बैठने के लिए कहा। एक स्त्री के साथ इस तरह एकान्त में बैठना अजीब सी स्थिति बन गयी। सोचा, क्या यह नीला भी मेरी ही तरह अनाथा है ? होगी। हो, तो बुरा नहीं है क्योंकि वह स्त्री है, इसलिए शरण की मांग से झुकती नहीं, गर्वित होकर स्वीकार कर लेती है। दया उसके लिए बोझ नहीं, स्वाभाविक आवश्यकता है। लेकिन मैं विपरीत हू।

लगा कि जैसे सिंहल की राजकुमारी के सामने मक्खी बना हुआ राजकुमार लाचार, मजबूर उसके अज्ञात आदेशानुसार, अपनी सीमित शक्तियों के साथ चिन्ता और फिक्र में भिन्ना रहा है। सोचा, मैं किस अकल्याण के भय से डर गया ? कौनसा अपमान, कौनसी पीड़ा, और कौनसी लाचारी मैंने नहीं सही है ? अब तो अपनी इस सहन-शक्ति के प्रति विश्वास हो जाना चाहिए था।

उसने धीरे से कहा, बैठो।

बैठ गया।

उसने हाथ धोये। पूछा, चाय पीयोगे ?

कहा, पी लूगा।

चाय बनाने के लिए उसने स्टोव जला दिया। पानी रख कर, मेरे सामने आकर बैठ गयी। मैं उसकी प्रत्येक क्रिया को एकाग्र दृष्टि से देख रहा था। लेकिन, अब वह मेरी ओर ध्यान से देख रही है,—यह जानकर लाल हो आया। नजर नीची कर ली। शायद लड़कियों की तरह पांव के अगूठे से धरती कुरेदता रहा।

उसने पूछा, कविता में तुम्हारी रुचि है ?

किसमें रुचि है, यह ठीक से नहीं जानता। विचलित सा हुआ। कहा, है !

—सुनो, एक कविता सुनाती हू।

मैं भावमुग्ध श्रोता की तरह मौन, उसके चेहरे पर टकटकी लगाये सुनता रहा। अंग्रेजी पर मेरा अधिकार नहीं। लेकिन भाव की बात थी, ऐसे भाव की, जो मेरे अन्तराल में, निन्द्रित अवस्था में विकास कर रहा था। कविता पूरी तरह से आज याद नहीं है। न वह कापी ही मिल सकी है। लेकिन उसमें जो कुछ कहा गया था, उसे कभी नहीं भूल सकूगा।

एक लड़के की भावानुभूतियाँ थीं, जो अनाथ है। जिसके माता-पिता अज्ञात हैं। बड़ा होने पर जान जाता है, कि वह किसी युगल की तिरस्कृत संतान है और उसकी दृष्टि में तमाम चरित्र-हीन स्त्रियाँ उपस्थित हो जाती हैं, जिनमें वह अपनी मा की खोज के लिए व्याकुल हो उठता है। दिन रात वेश्याओं के बारे में सोचता हुआ, चरित्र-हीनों के विषय में चिन्तन करता हुआ, वह अपने पर संदेह करने लगता है कि क्या वह कभी अपनी इस खोज से मुक्त नहीं हो सकेगा?

कविता में यही सब कुछ था, जो मेरे मन की अतल गहराइयों में सोया हुआ था। वह जाग गया तो उसकी फुत्कार से मैं झुलस-सा गया। सचमुच जिस माँ के प्यार के बारे में अनन्त प्रशस्तियाँ गायी गयी हैं, वह मेरे लिए इस संसार में अलभ्य है। विश्वास पूर्वक इस अभाग्य की बात भी नहीं कह सकता, कि वह जिन्दा है या नहीं। लेकिन कल्पना करता हूं कि वह जिन्दा है, और यहीं कहीं खो गयी है। ढूंढने की चिर-पिपासु वृत्ति करुण होकर बहने लगी। रोने लगा। अपनी कविता का प्रभाव वह देख रही थी। कहा, कल जिस पर कविता लिखी वह आज मिल गया। यह कैसा विधान है प्रभु का?

पानी उबलने लगा था। वह उठकर चाय की पत्तियां डालने के लिए स्टोव के पास चली गयी।

देख रहा था, गर्म पानी से भाप उड़ रही है। सोचता रहा, 'यही तो नहीं, यही तो नहीं?'

–इसके अतिरिक्त अनाथ व्यक्तियों का कोई और इतिहास नहीं होता?

–इस कलुष मनोभूमि के अलावा क्या मेरा कोई भविष्य ही नहीं?

–यह नीला! मैंने उसकी ओर देखा, स्टोव में हवा भरते हुए उसके जूड़े की वेणी हिल रही थी, यह उसकी अपनी आत्म-कथा है, या हृदय का वास्तविक चित्र? अथवा मुझे अपमानित करने के लिए उसने संचित कविता-संग्रह में से यही कविता पढ़कर मुझे कुरेद डाला?

पानी उबल रहा था। भाप घनी बन रही थी।

मन का विषाद अधिक कलुष हो गया।

लगा, कि एकाएक भावनाओं का जो उद्रेक एकत्रित हो गया है, उससे मेरा माथा फट जाएगा। मैंने कुर्सी की पीठ पर माथा टेक दिया। छत पर नजर गयी। कुर्सी की पीठ से कुछ ही ऊपर पंखे और बिजली का स्विच था। जीवन की तुच्छता, निरर्थकता और लांछना की ग्लानि के मारे हृदय फटा जा रहा था।

कहीं पढ़ा था, बिजली के स्लो-करेंट को धीरे-धीरे छूने पर भावोत्तेजना शांत हो जाती है। भावावेश और सुन्नता न होती, तो मैं अचेतन-सा कुर्सी से उठ न गया होता, और प्लग में उंगलियां न डाल दी होतीं। एक तेजी का झटका-सा लगा। अंगुली के अग्रभाग से माथे तक तीव्र सरसराहट-सी फैल गयी। चाहता था, अपने समस्त अतीत को भूलकर, एक क्षण पूर्व के व्यतीत को भुलाकर प्रस्तुत नीला के इस सहवास का सुख उठा सकूं। इसीलिए प्राणों की बाजी लगाकर भी बिजली के उस स्लो-करेंट से स्वस्थता चाहता था। लगा कि जैसे पिछली बातें माथे से विलीन हो रही हैं। दुबारा अंगुलि डाली।

नीला ने देखा। दौड़ती हुई आई। मुझे खींचते हुए बोली, यह क्या कर रहे हो?

उस स्पर्श में बिजली के करेंट से भी अधिक तीव्रता थी। मैंने हाथ छुड़ा लिया। पता नहीं कैसे, कह गया, अब स्वस्थ हूं।

–इस तरह से अपनी हत्या करोगे?

–तुम्हारे सामने ऐसा अपराध नहीं करूंगा। यह नहीं करता, तो मेरा दिमाग फट गया होता, नीला।

यही प्रथम सम्बोधन स्थिर हो गया।

शायद उसे कविता के प्रस्तुत प्रभाव को देखकर विरक्ति ही हुई।

मेरे कंधे पर हाथ रखकर, आग्रह के साथ उसने मुझे पलंग पर बैठा दिया। मैं दोनों हाथ पीछे की ओर टेक कर बैठ गया। माथे में अभी तक शून्यता सांय-सांय कर रही थी। मेरे दोनों कंधों पर अपने सीधे हाथ रखकर वह मुझे गौर से देखती रही।

एकाएक कुछ संकुचित और लज्जित सी हो, चाय की याद कर, उसने मुझे छोड़ दिया। प्यालियों में चाय भर कर ले आयी। एक कप मेरे हाथ में थमा दिया। आदेश मिला, पियो।

कहने लगीं –आत्महत्या अच्छी चीज नहीं। सारे कलाकार बिना कुछ करे, बिना अभिव्यक्ति के, इस तरह से आत्म-हनन करने लगें तो कला का क्या होगा, बताओ तो ?

–लेकिन यह राम तो कलाकार नहीं। कला का क्या होगा, इस प्रश्न का उत्तर देने की सामर्थ्य का अभाव ही है। कब कला-दक्ष हो सकूंगा, कौन कह सकता है ? बन भी गया तो महत्व की कौनसी बात होगी ? स्कूल में पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संख्या भी कम नहीं। वे कला-अर्चना कर लें, उनकी मीमांसा, विवेचना करके इस प्रश्न का उत्तर दे सकें, तो मुझे असंतोष नहीं रहेगा।

–जो करना चाहिए, उसे करने के लिए, कह सकते हो, कितने विद्यार्थियों ने तपस्या की होगी ? कलाकार के लिए अपना निजी व्यक्तित्व पहली शर्त है राम ! तभी वह केन्द्रित भावनाओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ हो सकेगा तभी उसकी भावनाओं की ऊर्ध्वमुखी परम्परा नूतन और प्रभावशाली चमत्कार प्रदान कर सकेगी।

–विश्वास नहीं होता, कि कुछ कर सकूंगा।

–जिनकी आत्मा इतनी विदग्ध है, जिन्होंने कुछ पाया ही नहीं, वे अपनी अतृप्त आकांक्षाओं से जिन अमर वस्तुओं की कल्पना करेंगे, आएगा एक दिन, कि लोगों को वे सहज ही प्राप्त होंगी। तब कल्पना करो राम, तुम्हारा आशीर्वाद कितना अमोल हो जायगा ! मैं पूछती हूं, आज तक तुमने जो कुछ सहा है, वह क्या सिर्फ इसलिए कि एक दिन चरम-सीमा पर विराम के आ जाने पर तुम्हारी प्रगति खत्म हो जाएगी ? ऐसा होता है, लेकिन तुम्हारे साथ नहीं होगा, यह गलत नहीं कह रही हूं, जानती हूं।

मेरी विवशता के बारे में उनके विश्वास को आज याद करता हूं, तो सोचता हूं, वह आज मौजूद होतीं तो विश्वास के प्रत्यक्ष पहलू को देखकर कितनी खुश होतीं ? लेकिन नाना प्रकार के कष्ट देकर, आज इस गरीब के पास, अभाव की इस एक करुण कहानी के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रह गया है।

खैर, भविष्य की सुनहली कल्पना से क्या होगा ? वास्तविकता जो है। उसके सामने विनीत होना यथार्थ है। उससे हार जाना भी वास्तविक है। आदर्शों के लिए जो सनकी होते हैं, उनमें हो जाऊं, यह बात दूसरी है, लेकिन स्वादनाएं नहीं हैं, यह बात सही है।

एक क्षण के लिए वह चुप हो गयी।

हाथ मे पड़ी चाय ठंडी हो रही थी। अन्तराल में पीकर, खाली प्याली को पलग के नीचे रख दिया।

शायद वह जवाब ढूढ रही थी। कहने लगी, "जो कुछ मौजूद है, राम, वही क्रम-हीन सत्य है, यह मानने को जी नहीं चाहता। सत्य के अन्य पहलू यदि प्रस्तुत न हों, तो यह भी मत कहो कि अतिरिक्त स्थिति है ही नहीं। है! दोनों का तटस्थ भाव से जो विश्लेषण कर सकते हैं, वे ही जीतते हैं। हार भी जाय, तो उनका पराक्रम महत्वहीन नहीं माना जाएगा।

'स्कूल में इस काया को अर्ध-नग्न देखकर सामने बैठे विद्यार्थी रेखा-चित्र बनाते हैं। तर्क है, कला सचेष्ट प्राण ऐसे होती है! होती होगी। पर मेरे लिए तो प्रश्न बना ही रहता है, कि क्या उन सबकी दृष्टि निर्विकार, कलान्मुखी ही है? ऐसा नहीं है, यह भी जानती हू। फिर भी सहती हू। इसीलिए सह जाती हू, कि इसे तो सहना ही होगा। इस तरह से नहीं सहूगी, तो दूसरी तरह सहना होगा। सहना तो होगा ही। इस सहने का एक रूप मजबूरी ही नहीं है, दूसरा भी है, जहां यह मजबूरी चिन्मय हो उठती है। उनकी सचित भावनाओं की सूक्ष्म अभिव्यक्ति का अध्ययन क्या अकारथ होता है? नहीं होता, इसीलिए मैं विरक्त नहीं हू। दुख तो सबको सालता है राम, लेकिन यदि कोई अपने आप को अकेला महसूस करने लगे, तो दुर्भाग्य अधिक काला हो जाता है।'

'लेकिन' उसने लम्बी सांस लेकर कहा 'राम, जिनका दुख बहुत काला हो गया है, वे ही अधिक सुलग भी सकते हैं—अधिक लाल हो सकते हैं।"

नीला के इस वक्तव्य के बावजूद भी उसके अधकार-पक्ष पर मेरा मन और मस्तिष्क टिक नहीं पाता। सिर्फ यही ख्याल रहता कि यह है नीला, जिसका अनजाना, अनदेखा प्यार वक्र होकर मेरे करीब आता जा रहा है। बल्कि उसके इस भव्य रूप के सामने अपनी अकिंचनता से दुखी-सा हो उठा। विनम्रता के साथ निवेदन किया, 'एकान्त और अकेलापन मुझे प्रिय नहीं है। लेकिन क्या करू, एक मे दो हो ही नहीं पाता! दृष्टि की सार्थकता की जो बात कह रही हो, वह मेरे लिए आकाश-कुसुम ही समझो'।

—नहीं राम। तुम अकेले नहीं। तुम जैसी मैं हू। मेरे जैसे तुम हो। हम जैसे अनेकों है। मुझसे मिल कर उन अनेकों की कल्पना कर लो, बाद में

अंधकार-पक्ष इतना प्रबल नहीं रहेगा। तुमसे बड़ा हूं, इसलिए आन्तरिक आशीर्वाद देता हूं कि तुम एक दिन प्रतिभा-पुत्र बनो, एक दिन सही मायने में कलाकार सिद्ध हो सको। जब ऐसे हो जाओगे, तो मैं इतने में ही राजी हो लूंगा कि एक दिन मैंने तुम्हें यही कहा था।

अकारण ममता। जैसे ध्रुव की साधना सफल हो गयी हो। उन्हें वरदान मिल गया हो। लगा कि अनाथ व्यक्तियों का भी मेल हो ही जाता है। पता नहीं उनके बच्चे अनाथ रहते हैं या नहीं, लेकिन यदि ऐसी संभावना हो, तो आलोच्य दो व्यक्ति ही नहीं, उसके लिए कोई और ही जिम्मेदार है, जिसके कारण दो के बीच में तीसरे के आगमन से क्रोधित होकर अभेद्य दीवार बना दी जाती है। लेकिन कौन कह सकता है कि वह तीसरा यूनिट अपने अनुकूल दो अन्य यूनिटों को छट नहीं निकालेगा!

यह स्वप्न है या सत्य! मैंने कहा, 'नीला, मैं तुम्हें छू सकता हूं!' मेरी आंखों में अंधकार-सा छाता चला गया। पानी भर आया। नीला धुंधली लगने लगी। भाग्य की सफेदी उज्ज्वल होकर चमक रही थी।

नीला ने कहा, मैं यहां हूं। मेरे पास आओ।

हर्ष विह्वल सा मैं झुक-सा गया।

बोला, प्रणाम।

उसने उठाकर हृदय से लगा लिया।

कहा, नीला बिजली के करेंट से मुक्ति नहीं मिलती। लेकिन तत्त्वबोध नहीं हुआ हो, यह नहीं कहता। मैं संकल्प के साथ जीना चाहता हूं। आज अधिक वैज्ञानिक और स्थायी आधार पा गया हूं।

ललाट को छूते हुए दो आंसू गालों पर चू आए।

कुछ ही घण्टों पहले किसी सद्गृहिणी की कृपा से तुलसी-दल जिस प्रकार आशीर्वाद दे गया था, ठीक वैसे ही।

कांपती आवाज से कहा, मुझे कभी छोड़ना मत।

–नहीं। राम, तुम मेरे पास ही बने रहना।

तत्त्वबोध का सागर नीला की इस कविता से उद्बुद्ध होकर उज्ज्वल हो उठा। सहसा मैंने देखा, कि मैं जिस स्थान पर खड़ा हूं, वह [illegible]

मेरी है, ऊपर तना हुआ विशालाकाश मेरा है। इस वातावरण में मैं व्याप्त हूं, अपनी अनुभूति का संवाहक हू।

नीला के नाम के अतिरिक्त अभी तक उचित सम्बोधन नहीं ढूंढ पाया था। लेकिन यदि वह मेरी बहन है, अन्नपूर्णा है, दुर्गा है, तो अभी तक मुझे बहुत कुछ ढूंढ निकालना है।

जिन रत्नों को प्राप्त कर सकूंगा, उनका मोल आंकनेवाले यदि नहीं मिल सके तो इस अथाह समुद्र की निन्दा नहीं करूंगा।

आंसू अनवरत बहते चले जा रहे थे। कोई इन्हें न देखे। देखे मेरे दिल को, जिसमें मुक्त प्रकाश है, प्रकाश ही प्रकाश!!

सारा विराट विलीन हो गया और जैसे सब कुछ नीला में समा गया हो; लेकिन मेरा अस्तित्व उसमें सुरक्षित है, यही इस विराट की विशेषता है!

दो :

नीला द्वारा प्रदत्त स्नेह को नियति का संकेत कह कर उसका गौरव कम नहीं करूंगा। बल्कि, दृष्टव्य कारणों की महत्ता को स्वीकार कर, अपनी इस स्वर्गीय स्थिति की निर्मलता के सम्मुख विनीत हूं।

नीला कैसी है, क्या है, जैसी है, क्यों है? और हम द्यु-लोकों के अन्तर के बावजूद भी किस एकसूत्रता में समीप आ गये, यह सब अब समझा हू। लेकिन उस दिन भी अपने सौभाग्य के प्रति कम गौरव महसूस नहीं कर रहा था।

स्कूल जाता हूं। हर शनिवार को नीला बिलकुल नग्न होकर हमेशा की तरह डेमॉन्स्ट्रेटर के निर्देशन के अनुसार स्थिर खड़ी हो जाती है। यह स्थिति अधिक असह्य हो गयी है। पहले की शून्यावस्था अब नहीं है। पहले जैसी मूढ़ता भी नहीं, तटस्थता भी नहीं। मन भागता-दौड़ता रहता है—खास कर

उन सह-विद्यार्थियों की ओर, जो नीला को देखकर कभी-कभी छिप कर आपस में फुसफुसाहट करते हुए मुसकरा पड़ते हैं। सम्भव है वे कुछ गुदगुदी महसूस करते हों। हो सकता है, कुछ कुत्सित विचारों की चर्चा करते हों— ऐसी ही अनेक कल्पनाओं में उलझ कर भटक-सा जाता हूं।

डेमोंस्ट्रेटर-महोदय ने लक्ष्य किया, मैं वहां नहीं हूं, जहां होना चाहिए। पास आकर टोकते हुए उन्होंने मेरी सुस्ती पर खेद प्रकट किया। उपदेश दिया कि 'फ्री आते हो तो अधिक मेहनत करनी चाहिए, अधिक एकाग्र होना चाहिए।'

गर्दन झुका कर मैंने सब कुछ स्वीकार कर लिया। छिपी नजरों से जानना चाहा, कहीं नीला ने तो नहीं देख लिया!

डेमोंस्ट्रेटर-महोदय समझा रहे हैं, कि सामने खड़ी इस मॉडेल को किस तरह से रेखाओं में ढाल लेना है।

और मैं सोच रहा हूं, इस विराट के लिए यह कागज लघु है। पेंसिल सामर्थ्यहीन।

एक नारी-स्त्री!

मॉडेल।

प्रतिकृति के लिए प्रेरणा।

उस दिन नीला कह रही थी, कि सारे विद्यार्थी निर्विकार, तटस्थ और निर्मल दृष्टियुक्त हों, ऐसी बात नहीं। स्वयं की नजर पवित्र है इसलिए उसकी अध्ययनशील आंख रिक्त नहीं रहती। वह बहुत कुछ पा लेती है। मेरी दृष्टि में शायद अभी तक वह उज्ज्वलता स्थायी रूप से आ नहीं पायी है। तभी तो बारम्बार अनावृत नीला की ओर देखने में असमर्थ होने लगता हूं।

मैंने तख्ते की ओर देखा। नीला के पैरों के समीप वस्त्रों का ढेर अस्त-व्यस्त पड़ा था। दो चप्पल थे, छोटे-छोटे। एक की एड़ी उठी हुई, दूसरे से कुछ दूर। दूसरा स्थिर। चलने की क्रिया का आभास! यही कोई चीज है, जो कला से सम्बन्धित है। सम्पूर्ण रूप विभाज्य है, सब से पहले उस समय तक, जब तक कि उसकी सूक्ष्म गति का अध्ययन करना हो। सारी क्रियाओं को समझने के बाद ही तो व्यक्ति का सारांश उपस्थित किया जा सकता है।

नीला के व्यक्तित्व के विराट स्वरूप को मैंने जिस रूप से देखा है, जानता हूं कि किसी ने नहीं देखा होगा। इसलिए सम्पूर्ण कथा के प्रति-दृष्टि

कोई भी, चाहे जितनी दक्षता से बनाना चाहे, वह सम्पूर्णता प्राप्त कर ही नहीं सकता। मैं ससीम हूं। सीमा संक्षिप्त है, इसलिए विश्वास का आधार लेकर, अपने को सामर्थ्यवान घोषित करने में लज्जा महसूस होती है। इसलिए इस विराट के एक मुकोमल स्वरूप को समझ सका, तो उसकी महिमा और मीमांसा मुझे असन्तुष्ट नहीं रखेगी। अखडित, अविक्त भावनाओं के साथ मैं उन दो चरणों को मुद्राओं मे खो गया।

नीला का एक पोज समाप्त हो गया। डेमॉस्ट्रेटर के आदेशानुसार पोज बदलते गये।

मै एक ही स्वरूप मे तन्मय था।

दुखी और अस्थिर-सा सोच रहा था, सम्पूर्ण का एक खंड भी जब मानवीय बुद्धि के लिए चुनौती है, तो सारे जीवन को उधेडकर जिन्होंने रखने की चेष्टा की है, क्या वे गलत हैं?

तभी तो किसी की इज्जत एक अच्छा खासा तमाशा बन जाती है।

लेकिन जानता हू कि कला-शिक्षण के इस क्रम के प्रति व्यक्त विद्रोह का सशक्त तार्किक आधार मेरे पास नहीं है। नहीं है, क्योंकि चिन्मय स्वरूप को जानने और समझने के पूर्व उसे अनावरण रूप में देखना ही होता है। इस नग्नता के प्रति आज तक की संचित घृणा ही वस्तुतः गलत है, वही दम्भ है, शठ है। मौलिक रूप मे देखने-समझने पर ही उस कल्पना का उद्भव होता है, जब कला जिन्दगी के करीब आ जाती है। अभ्यास का यह पहला अध्याय है। यह अनास्था कल तक नहीं थी, आज है। नीला सामने न हो, तो आने वाले कल मे नहीं होगी। इसलिए कहा मैंने, प्रस्तुत विद्रोह गलत है। गलत है, इसलिए कि मै क्लास से उठकर बाहर नहीं चला आया। प्रलापवाद मे सम्मोहित-सा मन के एक कोने मे अपने को सुरक्षित समझ कर उसी मे छिप जाने का प्रयत्न करने लगा।

बोर्ड पर मैं उठकर देखा, वामन के दो छोटे, किन्तु तीनों लोकों को नापने वाले चरण।

मेरी नीला के पाद-पद्म!

विराट का सूक्ष्म स्वरूप!!

जहाँ मेरा एकान्त समाप्त होता है; जहाँ भयानक उदासी खत्म होती है; जहाँ मुझे सब कुछ प्राप्त हुआ, देह को प्राण प्रदान करने वाली कृपापूर्ण नीला के चरण।

दो चरणों की पृष्ठभूमि, इस दास का विनीत माथा, कि इन तीनों लोकों के अतिरिक्त विराट लोक है हृदय, इस श्रद्धा को स्वीकार करो!

करुणा छलक आई। सृजनात्मक आनन्द कलाकार की चरम-अनुभूति है। जो मैं उस एक पल भर में महसूस कर रहा था, वह राजा युधिष्ठिर सशरीर स्वर्ग जाकर भी अपने सत्य के प्रताप से प्राप्त नहीं कर सके होंगे।

तन्द्रा भंग हो गयी। डेमॉन्स्ट्रेटर ने सारे स्केचेज ले लिये।

दिल धड़क रहा था, सबको मार्क्स मिलेंगे। मुझे भी। लेकिन मार्क्स देने के अतिरिक्त भी वे कुछ कहेंगे। क्या कहेंगे, यह जानने के लिए मेरा रोआँ-रोआँ सिर उठाकर खड़ा हो गया।

जो कुछ वे कहेंगे, उसे नीला भी सुनेगी, यह जानता था, और इसीलिए बारम्बार काँप-काँप कर ललाट पर चू आते पसीने को पोंछने लगा।

सबको नम्बर मिल गए। मुझे भी मिले। कितने थे, यह स्मरणीय नहीं। उन्होंने मेरे स्केच को हाथ में लेकर, उसे गौर से देखा, खुद बड़े जोर से मुक्त हँसी के साथ खिलखिला उठे। विद्यार्थियों ने सहज कौतूहलवश उसे देखा। मुझे लगा कि डेमॉन्स्ट्रेटर की हँसी सारे विद्यार्थियों पर छा गयी।

डेमॉन्स्ट्रेटर मेरी भावनाओं को नहीं समझ सका। वह केवल रेखाओं की गणित ही जानता है। लड़के बेचारे नहीं जानते कि किस बात पर हँसना चाहिए और किस तरह से हँसना चाहिए, उनके प्रति भी मुझे क्षोभ नहीं। लेकिन मैं यह देख कर घबरा गया। नजर उठाकर हतप्रभ सा देखता रहा, नीला भी उसे देखकर हँस रही थी।

हँसी समाप्त हो गयी। अपना स्केच पेंसिल-चालित सा उठकर ले आया। लेकिन सारे हॉल में मुझे बार-बार उसी हँसी की प्रतिध्वनी सुनाई दे रही थी। मैं सिर झुका कर बैठ गया। लगा कि जैसे उपस्थित सारे व्यक्तियों के हजार मुखों से अभी तक मेरा तिरस्कार हो रहा है।

शेष प्रश्न नहीं, कि नीला बता दे कि मेरी पूजा अनन्य है। श्रद्धा व यह भावना मात्र है। केवल भावना, भावावेश और उत्तेजना मात्र। यह आस्था और विश्वास स्पर्श है जिसके [illegible] हैं।

डर सा लगा। जाने पर, यदि वह उपहास से हंस पड़ी, तो श्रद्धा और भक्ति के साथ विनीत होकर क्षमा-याचना भी कैसे कर सकूंगा ?

नहीं, नहीं। अंतिम बार। आखिरी-बार उससे माफी मांग कर विदा हो जाऊंगा। अपनी विक्षिप्तावस्था से उसे दुख नहीं दूंगा। कहीं, ऐसी जगह चला जाऊंगा, जहां अपनी समस्त क्रियाओं को नीला की नजरों की ओट में रख सकूं। मुझे वह दिखायी ही न दे। दे भी, तो मैं भूल जाऊं कि यह नीला वही है, जो एक दिन कह चुकी है, कि हमेशा तुम्हारे पास बनी रहूंगी। अथवा जिसके प्रति व्यक्त श्रद्धा उसके स्वयं के उपहास का कारण बन गयी थी।

भ्रम को सत्य मान लेना ही गलती है। नीला का सम्बन्ध इतनी जल्दी पूज्य बनने के योग्य नहीं था। किसी को बिना पूरी तरह से जाने-बूझे अर्घ्य चढ़ाना अंधता प्रकट करना है। ऐसा ही हुआ है। यह गलत हुआ है। इसे स्वीकार कर लेना, बुद्धिमानी है। अभी अवसर है, कि इस मूढ़ता का निराकरण हो सकता है।

पूरी तरह से उसे क्या कहना चाहता हूं, यह नहीं जानता। लेकिन उसे देखने के लिए मेरे मन-प्राण व्याकुल हो उठे। ट्रामें और बसें पास ही से घर्राती हुई गुजर जाती हैं। जी किया कि किसी में बैठकर वहां पहुंच जाऊं। लेकिन जिसके पास पैसे नहीं है, वह लालच तो कर सकता है, पर साहस नहीं कर सकता। सोचा, एक आना किसी से मांग लूं!

पर भीख ?

आज तक स्वय-संचालित जो दान ग्रहण करना पड़ा है, वही पर्याप्त है। सिर नीचा करके, हाथ फैलाना अब संभव नहीं। भीख नहीं मांग सकूंगा।

भीड़ में बढ़ा जा रहा हूं, कि अनेक हमराहियों के मध्य मेरी मॉडेल, नीला दिखाई नहीं देती।

रात के ग्यारह बजे नीला के घर पहुंचा। दरवाजा बंद था। लगा कि रात के इस समय एक पुरुष द्वारा किसी भद्र महिला का दरवाजा खटखटाना शोभाप्रद नहीं। दरवाजे के पास निःशब्द आकर खड़ा हो गया। लाइट जल रही थी। एकाएक समग्र चेतना नसों में केन्द्रित हो गई। नीला जाग रही थी ? मेरे लिए ? पूछेगी, इतनी देर में क्यों आया, तो क्या जवाब दूंगा ?

बिना दरवाजे पर दस्तक दिए मैंने आवाज दी -नीला !

कोई उत्तर नहीं मिला। धीरे से दरवाजा खुल गया। वह जाग रही थ मेरा इन्तजार कर रही थी। इस अभागे और अनाथ व्यक्ति की प्रतीक्षा आज तक जहां पेइंग-गेस्ट के रूप में रहा हूं, वहां तो कभी ऐसा नहीं हुअ

धीरे से पूछा, तुम सोयी नहीं ?

–चलो खाना खालो। तुम्हारे लिए भूखी बैठी हूं।

प्रतिवाद के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं था। इस अकिंचन के लिए दिन भर भूखी रही है। आज्ञाकारी बालक की तरह मैंने थाली पसार दी।

कहने का प्रयत्न किया.—नीला. .!

–रात अधिक हो गयी है। सो जाओ।—उसने शासन के स्वर में कह

–नीला. !

वह सोने जा रही थी। मुड़ कर उसने मेरी ओर देखा, बोली, कहो ?

उत्तेजित स्वर में बोला, तुम मेरे लिए भूखी क्यों रही ?

–इतनी देर तक कहां थे !

–मैं जहां चाहे रहूंगा, तुम्हें इस तरह भूखे रहकर, दंड देने का व अधिकार है !

जैसे वह कहना नहीं चाहती हो। संक्षिप्त होकर बोली, 'राम, अच्छे आदमी हो। जाओ आराम करो। सो जाओ।'

–नहीं। मैं सोना नहीं चाहता। पूछता हूं, सुबह तुम उस स्केच हंसी क्यों थीं ?

–सब हंसे थे। इसलिए।

–तुम भी 'सब' हो ?

–अच्छा राम। बैठो मेरे पास। एक बात बताओ, सच कहो, मैं इ ऊंची हूं कि मेरी पूजा की जा सके ?

–नहीं, तुम किसी भी लायक नहीं हो।

–ठीक हां तो है। यही तो कहती थी। तो फिर वैसा स्केच तुमने बनाया था ?

–उसी गुनाह की माफी मांगने आया हूं। तुम वहां नहीं हो। सोचता था। अब यहां कभी नहीं आऊंगा।

–अच्छा। माफ करती हूं। सुनह जहां जी चाहे, चले जाना। जो न नहीं सकते, उनके लिए ईश्वर से दया की प्रार्थना करूंगी। मेरी ओर से के साथ ही समझना।

मेरे माथे में एक ही शब्द गूँजता रहा 'दया'। इस शब्द के प्रति मेरी संचित घृणा विकृत होती जा रही थी। क्रोध से कापते हुए, भले-बुरे का ज्ञान भूल कर, अपने आप को भूल कर, चीख पड़ा "तुम दया करोगी ? यह अहंकार तुममें कब से आया, कहो तो ?"

क्रोध और आवेश में, पास ही बैठी नीला के गालों पर मैंने कस कर दो तमाचे जड़ दिये। आज स्वीकार करते हुए शर्म से पिघल सा जाता हूं, एक अजीब सी तृप्ति मुझे उससे, चाहे एक पल के लिए ही सही, मिली थी।

इस अप्रत्याशित हरकत को देखकर कुछ क्षणों के लिए वह स्तब्ध बैठी रही। जरा-सा भी प्रतिवाद नहीं किया। संभवत वह मुझसे कुछ और बर्बरता की अपेक्षा कर रही थी। होश में आया तो जाना कि क्या कुछ कर गुजरा हूं। इसलिए करुण होकर, क्षमा-याचना के लिए संकोच के साथ कहना चाहा, नीला . !

वह उठ खड़ी हुई। कहा, ठीक है। सुबह चले जाना। यहां रहने लायक तुम नहीं हो।

कहा, नीला !

–इसी समय जाना चाहते हो ? जाओ।

–नीला !

विह्वल दृष्टि से उस अबला को देखता रहा। उसके गाल पर मेरे सख्त हाथ का निशान उभर आया था।

आज्ञा का पालन होगा, ऐसा शायद उसने उस समय नहीं सोचा था। इसीलिए, वह उठ कर पलंग पर जाकर तकिये में मुंह छिपा कर लेट गयी।

आत्म-ग्लानि से हृदय फटा जा रहा था। पशु भी ऐसा व्यवहार तो नहीं करते। मैं पशु से भी नीचे गिर गया। पतन हुआ भी तो कहां ? इस पाप का प्रायश्चित कैसे होगा ?

उसके चरण छू कर कहा, "नीला। अब कभी ऐसा नहीं करूंगा। तुम्हें कोई दुख नहीं दूंगा।"

लेकिन उसने मेरी एक भी बात का जवाब नहीं दिया। मैं पैताने सर टिकाए बैठा रोता रहा। लेकिन उसने एक पल के लिए भी मेरी ओर नहीं देखा। जाने कब, वहीं सो गया।

यह बेहोशी संक्षिप्त नहीं थी। सुबह ही उठा। देखा, नीला ने मुझे वहीं, उसी हालत में पड़े रहने दिया है।

वह अपने लिए चाय बना चुकी थी, और पी रही थी।

तिरस्कार को सह गया।

अपना सामान उठा कर, जिसमें कुछ कपड़े, दो एक पुस्तकें, ब्रश और कागज के अतिरिक्त कुछ नहीं था, मैं नीचे उतर आया।

तीन :

नीला के यहां से चला तो आया, लेकिन मन नहीं माना। आत्म-ग्लानि गयी नहीं।

स्कूल तो गया ही। काम भी किया।

दोपहर हुई। भूख लगी, तो नीला बरबस याद आयी।

'घर' शब्द में कितनी ममता, कितना मोह है! और मेरा 'घर' कितना अस्थायी एवं क्षुद्र है। सारा घर इस समय तो साथ ही ढो रहा हूं।

इससे तो इनकार कैसे कर सकूंगा कि रात को जो कुछ कर गुजरा था वह अत्यन्त निन्दनीय, असभ्य और बहुत ही बुरा था। लेकिन जैसा भी हूं, नीला ने एक दिन जिसे समस्त अनुराग के साथ अपने वरद-हस्त के नीचे ग्रहण किया था, वह उसे छोड़ कैसे देगी!

यही तो प्रवंचना है। अपने को निर्दोष प्रमाणित कर, नीला से अत्यधिक अपेक्षा करने का मेरा स्वभाव क्यों और कैसे बन गया, यह नहीं जानता। लेकिन अनाथालय में जिसने कुछ भी न पाया हो, वह लालसा की आंखों से किसी ओर देखे तो हे प्रभो, उसे क्षमा कर दो। उसे उसके अनुरूप स्थिति दो।

विश्वास तो था कि यदि प्रार्थना करूं, तो नामंजूर नहीं होगी। नीला लाड़ भाव से मुझे अंगीकार कर लेगी। क्या था उसमें कि मेरे ढंग से अपने के कारण वह भली बनी रही। फट गया। दुःख देने का जो अधिकार मुझे

मिल गया था, उस सर्व-प्रथम प्राप्त-सत्ता का प्रयोग पहले-पहल नीला पर ही करूंगा ? तो प्रभु के इस अमोल वरदान की उपेक्षा का प्रायश्चित कितने जन्मों में हो सकेगा, कौन कह सकता है ?

आठ बजे आरम्भ होकर दस बजे क्लासें समाप्त हो जाती हैं। फिर ग्यारह से शुरु होकर ६ बजे। पहले पीरियड में ही मन उकताने लगा। बार-बार अपना दुष्कृत्य याद आता। सो छुट्टी होते ही अनजाने में पतित, स्खलित, और अवसाद भरा नीला के पास चला गया।

मुझे देख कर, अनदेखा कर, पुस्तक पढ़ने में वह तल्लीन हो गयी। तीव्र उपेक्षा का वातावरण घनीभूत हो गया। कहा, "नीला, तुम्हें कुछ कहना बाकी है। नहीं कह पाया तो दुख के भार से मुक्त नहीं हो सकूंगा।"

नीला ने मेरी ओर आंख उठा कर देखा, बोली, तो ?

मैं वहीं खड़ा रहा। दरवाजे के समीप। जो कहना चाहता था वह कहने के पश्चात करना क्या होगा, यह निश्चित नहीं था। इसलिए अन्दर प्रवेश नहीं कर सका। कहा, 'इस विशाल ससार में तुम ही तो एक हो, जिसके सामने मन की कोई बात कह सकता हू। तुम इस दुख को नहीं समझोगी; तो बताओ, किसके पास जाऊं ?

पुस्तक बद करती हुई बोली—अपना ही दुख कम नहीं है राम ! उसे सभाल लू तो वही काफी है। किसी और का बोझ संभालने की जो मिथ्या धारणा कल तक थी, वह आज नहीं है, और जब आज नहीं है, तो उसे स्वीकार कर लेने में मुझे लज्जा नहीं।

दुखी हुआ। कहा, नीला कल पागल हो गया था। कारण ..

—मैं क्या करू कारण जानकर, और उसका परिणाम भी जानकर ?

—एक दिन तुम इतना प्यार जता रही थीं, आज मैं भिखमगे की तरह तुम्हारे द्वार पर खड़ा हू, लेकिन तुमसे 'आओ' तक नहीं कहा जाता ?

—इतनी उन्मादिनी तुम बिना कुछ जाने बूझे किसी से क्यों लगा बैठते हो ?

जिस दया के प्रति मेरी घृणा की सीमा नहीं, उसी के लिए मैंने दोनों हाथ पसार दिये थे।

जैसे वज्र गिर गया हो। दोनों तनी हुई भुजाएं लटक गयीं हों। लगा कि जैसे वह झूठ बोल रही है। लेकिन यह आरोप सिद्ध करने वाला व्यक्ति मैं नहीं हू, यह जान गया।

"जो हो। जिनकी गलती है, वे उसका प्रायश्चित करेंगे ही। इसके अतिरिक्त चारा नहीं।" मैंने कहा "मैं तो अनाथ हूं। दया तो पायी। लेकिन किसी की दया पर मेरा अधिकार नहीं है, यह अब जान गया हूं। इसलिए मेरा रुठना कोई मायने नहीं रखता। तुम्हारे यहां रहता था, सो तुम्हारी कृपा के लिए धन्यवाद दे दूं। इससे अधिक क्या करूं? चला जाऊंगा, तो भी कुछ नहीं होगा। मेरे जैसे व्यक्ति का कोई महत्व है या नहीं, और उसके न होने से कोई हानि होगी, यह नहीं जानता। होती भी हो तो उसके लिए तुम्हें चिन्तित होने का कोई कारण नहीं। फिर भी जिसे पल भर के लिए स्वर्ग का सिंहासन मिला हो, उसे उस पल के प्रति गौरव करने दो नीला। और महज इसलिए, कहने दो मुझे एक बात, जिसे बिना कहे गौरव धुंधला रह जाएगा।"

नीला गौर से मेरी ओर देख रही थी। जैसे वह मेरी बातें सुनने के लिए तैयार हो। कहा, "अन्दर आकर, कुर्सी लेकर बैठो। कहो, जो कहना चाहते हो।"

धीरे से आकर कुर्सी खींच कर बैठ गया। कहा, "स्वर्ग का जो सान्निध्य प्राप्त हुआ था, वह कैसा था, यह तो कह चुका हूं। सो, इन सारे तुच्छ विद्यार्थियों के सामने नग्न-रूप में तुम्हें देखने में अरुचि होती है। घृणा होती है। व्यक्त अनादर की फुसफुसाहट मुझसे बर्दाश्त नहीं होती। बस। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कहना है।"

उसने जवाब नहीं दिया। लगा कि मैं अपनी बात पूरी नहीं कह सका हूं। कहा, तुम्हीं ने एक दिन कहा था, ये सारे विद्यार्थी भले और निर्विकार ही हों, ऐसी बात नहीं। वे विकार से बुझी हुई आंखों में तुम्हारा अपमान करें, बस यह बर्दाश्त नहीं होता। कहोगी, यह प्रज्ञा है। तो है। तुम उपस्थित नहीं होती तो किसी अन्य मॉडेल के बारे में ऐसा नहीं कहता। लेकिन जो उन्हें ऐसा व्यक्ति मिल जाता जिसके आग्रह में इतनी याचना होती तो वह इस हीन-कर्म को त्याग ही देती। तुम्हें पूजा के स्थान पर देखा, इसके अलावा अब नहीं देख सकता। लगता है, जैसे अन्धा हो जाऊंगा।

मेरी सांस तेज चलने लगी थी। नीला ने लक्ष्य किया। और कुछ कहता, इससे पहले उसने रोक लिया, कहा, मेरी बातें सुनोगे? क्या होगा, सुनके? मेरी नग्नता के प्रति तुम्हें रोष है, बहुतों को होगा। कुछ विद्यार्थियों

की दृष्टि के प्रति क्रोध है। और वह गलत भी नहीं है। लेकिन इसका समाधान क्या है? मेरे पास नहीं है। सो, यही मानती हूं, जो प्राणों की चेतना को नहीं जानते उन्हें ऐसा प्रश्न उठाने का कोई अधिकार नहीं। मैं चेतना के अभ्यन्तर को नग्न देख सकती हू, उसके उद्‌बोधन को प्रस्तुत स्वरूप में स्वीकार कर सकती हू, इसलिए विपरीत दिशा की ओर आकर्षित नहीं हू। जहां हू, सोचती हूं, यहीं ठीक हू।

–अभ्यन्तर की गहराई को समझ जाना सचमुच बड़ी बात है नीला! लेकिन इससे क्या होगा?

–इन तथ्यों से परिचित हुए बिना सत्य अप्राप्य है। सत्य के बिना सिविलाइजेशन नहीं, उससे बिना मनुष्य नहीं, मनुष्य के बिना प्राणियों की सृष्टि सार्थक नहीं। इस तथ्य को संक्षिप्त मत समझना। यह बहुत विस्तृत है। इसे अपने पराक्रम के साथ जो प्रस्तुत कर सकेगा, करने के लिए जो साधना करेगा, उसका मूल्यांकन कोई करे या नहीं, लेकिन विधाता अपने खाते में भूल नहीं करेगा।

–यह देख चुका हू कि वास्तव मे जीवन के हर भाग में भावनाओं की यही ऊंचाई नहीं होती। इसीलिए दंभ के रंगीन आवरणों के पीछे जो अपनी कुत्सित लांछना को छिपाना चाहे, उसे अपने को अमूल्य घोषित कर गौरव तो नहीं करना चाहिए।

–जो उपस्थित नहीं है, इसलिए वह 'अस्ति' नहीं? यह तुम्हें किसने कहा? आडंबर में लिपटा हुआ स्थूल व्यक्ति अथवा पदार्थ ही सत्य नहीं। अनावरण होने पर जो सूक्ष्मता रहती है, वही परम-सत्य है। इसलिए कि वहां शर्त नहीं। अनावरण करते जाओ सत्य का उज्ज्वल और उज्ज्वलतर स्वरूप प्राप्त होता जायगा। प्राप्त सत्य जिसके पास हो, वह अपनी साधना को भुलावे में आकर असार नहीं मानेगा।

–आवरणों की यह भाषा मेरी समझ में नहीं आती। कहो तो, जो कुछ मेरा व्यक्तित्व है, वह आवरण नहीं? उसे भेद कर, जो मैं हू, विनीत जिज्ञासु और प्यार का भूखा, वह सत्य नहीं है? फिर कृतित्व अथवा आवरण को महत्व देकर व्यक्ति को अपमानित करने का अर्थ क्या समझाओगी?

–तुम बालक नहीं हो राम। तुम्हें सहना आसान नहीं। हो भी तो रुचि नहीं होती। नाराज नहीं हू। सोचती यह हू कि हम एक दूसरे को समझने-

सहने को तैयार नहीं। तुम शायद हो भी। लेकिन मैं समझती हूं, कि यह व्यर्थ है। सो ओवजेक्ट के रूप में जो सत्य है, वह द्रष्टा पर लादा ही जाय, यह तो न्याय की वात नहीं हुई।

"कल तुम्हारे उस जंगलीपन को सह गई। अव उसका आभास भी नहीं सह सकती। इसलिए कि उसके सहे विना काम चल सकता है। जिसे सहना मजबूरी है, उनकी संख्या भी कम नहीं। फिर व्यक्तित्व के अनेक पहलू भी तो हैं। मेरे भी, तुम्हारे भी। कुछ ऐसे भी, जिन्हें देखने के आधार हमारे भिन्न हैं। उस दिन तुम्हारी तिक्तता की कल्पना करके, आज उदासीन हो जाती हू कि जैसे भी सम्वन्ध अव तक रहे हों, वेही पर्याप्त हैं। इससे अधिक कुछ नहीं हो पाता, तो किसी से किसी प्रकार की शिकायत क्यों करू?

–नीला, कोशिश करें एक दूसरे को सहने समझने की। इसे असंभव मत कहना।

–कोशिश करके भी तुम्हारे हाथ कुछ लग सकेगा; ऐसा विश्वास नहीं होता। कई ऐसी चीजें है, जिन्हे खोल कर नहीं वता पाऊंगी। लेकिन एक दिन तुम सव जान जाओगे। इसीलिए तुमसे छिपाने की अधिक कोशिश नहीं करूगी। एक मौलिक वात है। पैसे के विना काम नहीं चलता। मेरे पास आमदनी का एकमात्र जरिया इस काया का प्रदर्शन और उपयोग ही है। यह लम्वी कथा है कि जीवन ने ऐसा रूप धारण क्यों कर लिया? उसका साराश यही है कि यह सव जवर्दस्ती नहीं हुआ। स्वेच्छा से हुआ। इसके अतिरिक्त कुछ कर नहीं सकी। कोई मार्ग ही नहीं मिला। जो रास्ते थे, वे मेरे वस के नहीं थे। आत्मा उसे स्वीकार नहीं कर सकी। अपने आप को मंजो कर एकान्त में नष्ट कर देने का मेरा आग्रह कभी रहा नहीं है, रहेगा, ऐसा भी नहीं सोचती।

वीच में ही मुंह से अचानक निकल गया:–लेकिन यह तो पाप है?

जैसे उसने सुना न हो, कहती गयी—जो हिसाव नहीं रखता न राम, वह कितना ही ईमानदार क्यों न हो, वाजार में उसका मूल्य नहीं होता। लेकिन हिसाव रखने वाले से यदि जोड़-वाकी में कहीं गलती रह जाय, तो उसे उदार दृष्टि से सहज ही क्षमा किया जा सकता है। पाप नहीं करूंगी, तो धर्म करूंगी। दोनों का हिसाव तो रखूंगी ही। पाप जो है, उस ओर से आंख मूंद कर, धर्म-के-नाम पर अपने कर्मों का मूल्यांकन करना तो हिसाव न रखने की वात हुई। यह भूल नहीं। यह तो भ्रम है।

अजीव से इस तर्क का जवाव नहीं दे सका, संकोच से पूछा –लेकिन इससे तुम्हें आत्म-ग्लानि नहीं होती ?

–होती है। तव, जव कि देखती हूं कि पाप और पुण्य के वीच में पैसा वजन वन आता है। ऐसा नहीं होता तो ग्लानि नहीं होती। अफसोस नहीं होता। नित नये मोडलों को देखकर उनके प्रत्येक सूत को समझना कम नहीं। मैं तो नहीं मानती।

–अच्छा तो है। सिद्धान्तों की वडी वातों में पैसे का व्यवसाय बुरा रहता हो, शायद ऐसा नहीं होता।

मेरा व्यंग छिपा नहीं रहा। जानवूझ कर मैंने चोट की थी। वह विचलित नहीं हुई। वोली, ' घटनाओं में सत्य देखना होता है राम, सत्य की शर्तों पर घटनाओं का अवमूल्यन इस जीवन के लिए उपादेय नहीं। व्यवहार्य नहीं। निभ नहीं सकता। इसलिए कि जो कुछ घट रहा है, घटेगा, वह मेरे वस का नहीं। उसके संचालक के वारे में सीधे रूप मे मुझे कुछ मालूम नहीं। लेकिन सत्य को ढूढने का मेरा आग्रह हो, तो वह एक व्यक्ति का प्रयास ही रहेगा। इसलिए घटनाओं की दरिद्रता के साथ मेरे सत्य-शोध के प्रयत्नों की इयत्ता समाप्त हो जायगी, ऐसा छल मैं अपने साथ नहीं कर सकती।

–मान लूगा नीला, कि तुम जो कुछ कहती करती हो, वही परम-सत्य है। ठीक है। इस वारे मे मैं अधिक नहीं जानता। फिर भी यही कहना है कि यह कम खतरनाक रास्ता नहीं।

–खतरे से डरने की भली वात कही। रास्ते पर चलना भी खतरनाक है। घर में वैठे रहना भी। जो अभाग्य के वारे में इतना उत्सुक है, उसे दुर्भाग्य के नक्षत्र भी प्यार करने लगते हैं। तुम्हारी इस वात पर एक कहानी याद आ जाती है। किसी व्यक्ति ने समुद्र पर ही समय विताने वाले एक नाविक से पूछा, अरे! तुम समुद्र में यात्रा करते हो, यह तो वहुत खतरनाक है। आगे उसने पूछा कि उसके पिता और पितामह की मृत्यु कैसे हुई, तो उसने वता दिया, कि समुद्र में हुई। कारण वताये, तूफान से हुई, भवर में नाव फस गई, इससे हुई। किसी समुद्री मछली ने नाव उलट दी, इससे हुई। पूछने वाला दया के स्वर में वोला, हे प्रभु, कितना भयानक काम है, इसे छोड़ दो भाई।

वह रुकी। मुझे लगा कि अभी तक आगे कुछ कहना शेष है।

वह कहती गयी, "नाविक ने पूछा, अच्छा बताओ तो, तुम्हारे पिता, पितामह और उनके पिता की मृत्यु कैसे हुई ? प्रश्न पूछने वाले ने याद करके कहा, एक की मृत्यु मलेरिया से हुई, दूसरा हार्ट फेल होने के कारण मर गया। गोली लग जाना तीसरे की मृत्यु का कारण है। इस पर नाविक अपने आपको अधिक सुरक्षित मानकर, प्रश्नकर्ता की दया की अवहेलना कर चलता बना।"

मैं उसके प्रत्येक शब्द को गौर से सुन रहा था। कहा, उदाहरण सापेक्ष है नीला। लेकिन सोचो तो, जलती आग में ख्वामख्वाह हाथ डाल कर उसे जलते देखना तो शहादत नहीं। बुद्धिमानी भी नहीं।

–लेकिन आग की पीड़ा को सही रूप से जानने के लिए कोई अपना हाथ जला भी बैठे, तो मैं उसे असार और मूर्खता नहीं कहूंगी।

मैं चुप हो गया।

उसने पूछा, तुमने खाना खा लिया ?

–नहीं। पैसे नहीं है।

–तुम्हारे कुछ पैसे मेरे पास हैं। दूं ?

–दे दो।

सम्बन्धों की समाप्ति स्पष्ट हो गयी। निर्लज्ज–सा होकर पूछ बैठा, तुम्हीं न खिला दो ?

–मैंने खा लिया है। कहो तो तुम्हारे लिए बना दूं ?

औपचारिकता के स्वर को मैं भी पहचान सकता हूं। आगे कुछ नहीं पूछा। उसने इसे नकारात्मक ही समझा। अच्छा हुआ।

इस आदि–गुरु से जितना कुछ जानता जाता हूं, उतनी ही यह दुरूह होकर उपस्थित हो जाती है।

एक नूतन रूप, जिसमें मेरा तिरस्कार करने की कामना सम्भवतः न भी हो, लेकिन जो अपना अपमान करके भी उसे महसूस न करने की शपथ लिये हुए है। चाहे जो तर्क हो, नीला वेश्या है, यह जान कर दुख ही हुआ, विरक्ति भी हुई। घृणा नहीं हुई हो, ऐसी बात भी नहीं।

आलमारी खोलकर पैसे लाकर उसने मेरे हाथ में रख दिये। ले लिये। कहा, "चलता हूं नीला। तुमसे तर्क में जीत सकूंगा, ऐसी आशा नहीं। इतना ही

पूछना है कि 'वेश्या' के प्रति आज तक, एक विशेष प्रकार का जो संस्कार चला आ रहा है, वह क्या नितान्त मिथ्या है ?"

'वेश्या' शब्द से नीला को चोट पहुंची। बोली "संस्कार का अर्थ ही रूढ़ है राम। इसका आगे विकास होता है या नहीं, सो नहीं जानती, लेकिन जड़ता है, यह जानती हू। कभी-कभी ऐसा होता है कि जड़ता स्थूल रूप में स्वस्थ होती है। लेकिन वह रहती जड़ता ही है।"

"संस्कार मेरे भी है। तुमने 'वेश्या' कहा। मुझे अच्छा नहीं लगा। इस शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत मैं आ जाती हू—यह सही है। लेकिन इसे गौरव के साथ, विशेषण के रूप में अपने साथ जोड़ना नहीं चाहती। कहा न मैंने, वेश्या बनना मुझे पसन्द नहीं। शरीर देकर धन लू, यह ठीक नहीं लगता। इसे संजोकर, पवित्र बनाये रखने का दंभ भी मुझ में नहीं। लज्जा और शर्म नहीं, यदि मीडियम के रूप में पैसा न होता। बच नहीं पाती—इसलिए स्पर्द्धा भी नहीं रही। कभी अन्तर्दृष्टि से देख सको, ऊंचे कलाकार बन सको, तो इस व्याकुल-वेदना के मौलिक स्वरूप को समझने की कोशिश करना, और समझाना उन्हें, जो नहीं समझ पाते है। पैसे के विनिमय में शरीर का सौदा महंगा है। इसलिए यदि कभी पैसे प्राप्त करने के लिए कोई दूसरा तरीका निकाल सकी, तो तुम्हें खुश करने के लिए समय पर समाचार दूगी।

-तुमने ठीक कहा था नीला। समझना आसान नहीं है, और सहना भी। तुम मुझसे बड़ी हो। हर मायने में, इसलिए प्रणाम करता हू।

विनीत होकर उसके चरण-स्पर्श किये, तो वह कुछ संकुचित-सी हो उठी।

जाने लगा तो उसने रोक कर बुलाकर कहा, 'उस दिन तुमने जो चित्र बनाया था, वह मुझे दोगे ? जिन चरणों की तुम पूजा करना चाहते हो, वे मेरे लिए भी शायद कम महत्वपूर्ण नहीं होंगे। सच, राम, सोचती हू, अपनी इस आत्म-अहंकार की प्रवृत्ति के बारे में, कि अपने चरणों की खुद ही पूजा किया करूंगी। तुम मुझ पर कोई लाछना तो नहीं लगाओगे ?'

स्केच मेरे पास ही, थैले में था। लगा कि अपने आप मे वह पूर्ण नहीं है। अपूर्ण भेंट क्या करू ? सो कहा, 'दूगा !'।

उसने रोका नहीं। मैं नीचे उतर आया। सीढ़ियों के पास ही एक सज्जन मिल गये। बड़ी तेजी से ऊपर जा रहे थे। एक क्षण के लिए रुक कर पूछा, 'मिस नीला यहीं रहती हैं ?'

मैं अपने में ही मगन था। कहा, 'हां यहीं। पहले माले।'

सोच रहा था नीला वेश्या है। इसे वह ठीक समझती है। क्यों और कैसे, यह जानने के लिए यह-जीवन पर्याप्त नहीं।

सोचा, जो एक आदमी अभी-अभी सीढ़ियों के पास मिल गया था, वह नीला का ग्राहक ही तो नहीं था?

मालम हो जाय कि 'था', तो क्या करता?

छिः छिः कर उठा—नीलारानी वेश्या! वेश्या!!

चार :

स्कूल से छुटा, तो एक पंजावी रेस्टोरेंट में चला गया। दो रोटियां लीं, एक दाल। पांच आने लग गये। एक रोटी और लेना चाहता था। पर संयम रखा।

पेट भर गया तो नवीन परिस्थितियों पर दृष्टि दौड़ा गया। सोने और नहाने धोने का इन्तजाम स्कूल के एक चपरासी के साथ तय हो गया। पांच रुपया मासिक निश्चित हुआ। पांच आने के हिसाव से खाने का खर्चे नियमित हो जाय, तो चैन से कटेगी, यही सोचा।

फिर भी नीला की वात भूला नहीं। सारे तर्क-वितर्कों को याद नहीं रख सका। लेकिन उसने 'चरण-रज' चित्र मागा है, इसी का ख्याल रहा। इसलिए धोबीतलाव के पास, और मेट्रो सिनेमा के सामने, जहां पर पब्लिक-यूरीनल्स बने हुए हैं, और जिसके पीछे विशाल मैदान फैला हुआ है, बैठ गया। थैले से उस दिन की वह कृति निकाली। कुछ क्षणों तक एकटक देखता रहा।

एक लेम्प पोस्ट है, जिससे पर्याप्त लाईट मिल जाती है। यूरीनल्स पास हैं, इसलिए व्यर्थ ही भीड़ जिज्ञासा और कौतूहल लेकर एकत्रित नहीं होती। प्रतापी विद्यासागर की कथा पढी थी, इसी तरह लेम्प-पोस्ट के सहारे अध्ययन करते-करते एक दिन वे राष्ट्र-पुत्र वन गये थे। आज उसी तरह मैं वैठा हूं। इस राम का कृतित्व उचित सम्मान पाये, इस संकल्प के साथ।

रात भर जागता रहा। स्केच तैयार करता रहा। चित्र को शब्द सही रूप से और सम्पूर्ण आकार के साथ प्रस्तुत नहीं कर सकेंगे, इसलिए उसकी बाहरी रुपरेखा के बारे में ही कुछ कह सकता हूं —

दो सुकोमल चरण, दोनों गतिशील। एक वर्तमान में, एक भविष्य की ओर। पृष्ठभूमि में लम्बी राह। अनन्त समुद्र के सम्मुख एक नन्ही-सी बूंद के समान एक व्यक्ति, साफ कहू, मैं स्वय, चरण-चिह्नों पर माथा नवाये, विनीत।

सचमुच नीला के कुछ रूपों पर मेरी श्रद्धा अखण्डित, अविभाज्य, एक इकाई ही रहेगी। लेकिन उसके कदमों के साथ चलने की सामर्थ्य मुझमें नहीं। पथ के प्रति एकाग्र विश्वास भी नहीं। मैं तो सिर्फ विनीत हू। जहां तक वह आयी है, जिस रूप में अब तक वह प्रस्तुत है उसके सम्मुख झुका हुआ।

स्केच बनाता, रबर से मिटाता, फिर उसे तैयार करता। रात ढलती गयी। मैदान सुनसान हो गया। एकान्त गंभीर। हवा सर्द। भोर का सितारा जब चमकने लगा तो मैंने आसमान की ओर नजर उठा कर देखा, अनुमानतः उस समय चार बजे होंगे।

पूरे आठ घंटे तक मैं अपनी एक भावना के इर्द-गिर्द घूमता रहा। मैं, मेरी श्रद्धा, नीला का सम्पूर्ण व्यक्तित्व—नीला का उन्नत प्रशस्त स्वरुप और मैं— तुच्छ, हीन, रज!

कृतित्व के निर्माण का सुख कलाकार ही जान सकता है। 'वह बहुत सुखी हुआ,' इतना कह कर उसका आभास मात्र ही दिया जा सकता है, जो उसने कृतित्व के कारण प्राप्त किया होगा। जी किया कि तुरन्त जाकर नीला को दे आऊ। वह देखे। प्रसन्न हो। मुसकरा दे। मैं धन्य हो जाऊ।

मैंने कागज पत्तर सभाले। बैठा तो घास के तिनके कपड़ों में चिपक गये थे। झाड़-पोंछ कर उन्हे अलग किया। कपड़ों की सरसराहट उस शांत वातावरण में सगीत की तरह मधुर-सी लगी। यही शृंगार था। इस काया की वह कैसी सुन्दर व्यवस्था थी!

वांबीतलाव से मरीनलाइन्स-स्टेशन का पुल पारकर, मरीन-ड्राइव पर आ गया। उत्साह और मस्ती से भरा हुआ था। तेजी से दौड़ने लगा। आज जितनी प्रसन्नता महसूस की, उतनी फिर कभी नहीं कर सका। हांफ गया तो रुक गया। सोचा, दौड़ने से रास्ता जल्द ही समाप्त हो जायगा। घाट से नीचे उतर कर चट्टानों पर आ गया। चन्द्रमा की दूधिया चांदनी अभी तक प्रकाश

डाल रही थी। चट्टानों पर संभल-संभल कर कदम रखता हुआ, तेजी से दौड़ता आगे बढ़ने लगा। दो बार फिसलते-फिसलते बचा। याद आया, नीला ने कहा था, 'कभी-कभी आग में हाथ डाल कर चिर-अनुभूत अनुभव को दुहराने की भी आवश्यकता पड़ सकती है कि हाथ जलता कैसे है?

इससे भी संतुष्ट नहीं हुआ, तो चट्टानो मे उतर कर रेत पर आ गया। फिर दौड़ने लगा। जैसे समुद्र लहरों के साथ खेल रहा था, वैसे ही मैं लहरों और किनारों के बीच मुक्त किल्लोल करता हुआ भागा चला जा रहा था। शीतल समुद्री हवा सांय-सांय करती हुई थिरक् रही थी। उस ठंड के बावजूद भी मैं पसीने से तर हो रहा था।

किनारा खत्म हुआ तो स्वीमिंग-पूल आ गया। घाट पर चढ़ने के लिए मुड़ा तो किसी टार्च की रोशनी मेरी आखों में कौंध गयी। मैंने उस ओर देखा, रोशनी मेरे साथ ही साथ घूमी। यह व्यवधान अच्छा नहीं लगा। स्थिर हो कर एक क्षण के लिए रुक गया। रोशनी बंद हो गयी। कुछ ही देर बाद एक सफेद छाया मेरी ओर बढ़ने लगी।

दूर तक फैला हुआ वह स्तब्ध मुक्त वातावरण, उसमें मेरे अतिरिक्त किसी और का भी अस्तित्व! या तो मैं अपनी छाया से ही डर गया हूं, अथवा सचमुच कोई भूत-प्रेत है। ऐसी ही कुछ कल्पना हुई थी। वह सफेद छाया सरकती हुई, मेरे बिलकुल करीब आ गयी। टार्च जला कर कठोर स्वर में पूछा, 'कौन है?'

कोई आत्मीय नहीं था। नाम बताना व्यर्थ था। लेकिन बताया, कहा, राम हूं।

-यहा क्या कर रहे हो?

-घूम रहा हूं।

-यह भी कोई घूमने का वक्त है?

-इसके लिए कोई किसी से राय ले?

-लेनी होती है।

-होगी; नहीं ली।

-अकड़ कर क्यों बोलते हो?

चुप हो गया। सामने पुलिस इन्स्पेक्टर था।

-हवालात जाने का इरादा है?

-नहीं, ऐसी तो कोई योजना नहीं।

–सीधे घाट पर चलो। इधर नहीं।

–अच्छी बात है।

–सच बताओ, सुसाइड करना चाहते हो?

–ऐसा तो नहीं कर रहा था।

–सन्देह हो जाय, तो तुम्हें गिरफ्तार कर लें।

–सो तो आपका काम ही है, करिये। मना नहीं करूंगा। करूंगा, तो भी आप मानेंगे नहीं। लेकिन यह मत कहिए, कि आत्म–हत्या कर रहा था।' विश्वास कीजिये आज तक आत्म–घाती बातें ही सोचता रहा। आज पहली बार जीवन की बातें सोची हैं। आज बहुत बढ़िया काम किया है। जिसका काम है, उसे दूंगा तो वह खुश होगी। सुबह, बिलकुल ऐन सुबह बुलाया है। इसीलिए तो जल्द ही चल पड़ा हूं। लेकिन इस समय पांच से अधिक नहीं बजे होंगे। सात तो बजने ही चाहिए। इसीलिए समय बिता रहा था। घाट पर चलता, तो समय जल्द ही खत्म हो जाता। फिर किसी के मकान के सामने बैठ कर इन्तजार करना तो अच्छी बात नहीं। क्या कहते हो?

वह मेरी बातों से उकता–सा गया। उबासी लेते हुए बोला, 'फालतू की बात मत करो। बोलो, मरने की बात तो नहीं करता है? थोड़े में जवाब दो।

लेकिन मैं संक्षिप्त नहीं हुआ। कहा, 'नहीं साहब, नहीं। आपके राज में ऐसा कोई कर सकता है क्या? मेरे जैसे आदमी आत्म–हत्या करने लगें, तो पता नहीं हिन्दुस्तान के कितने नौजवान भी ऐसा ही कर डालें। कर लें, फिर तो गिरफ्तारी की बात नहीं। करने की सोचते हैं, उन्हें आपके कानून की किसी धारा से गिरफ्तार करना संभव हो, तो इन्स्पेक्टर साहब, आप देश के ८० प्रतिशत लोगों को आंख मूंद कर गिरफ्तार कर डालें।

अबकी शायद उसे मेरी बातें दिलचस्प लगीं। बोला, सिनेमा के डायलोग बोलता है बे?

फिर टार्च जला कर मेरी ओर देखा। चेहरे से अन्दाज लगाकर पूछा, स्टूडेण्ट है?

–यस सर।

–कौनसे कालेज में पढ़ता है?

–आर्टस् स्कूल में।

–घर में कोई नहीं है? रात भर आवारागर्दी करता है। आर्टिस्ट है क्या?

–आर्टिस्ट हू। घर में कोई नहीं है। रातभर आवारागर्दी नहीं करता।

–यू नो पेंटिग? हमारी तस्वीर वना सकता है?

–वना सकता हूं।

–कितना पैसा पडेगा?

–जितना आप दे दें।

–कल स्कूल के फाटक पर मिलना। हम आयगा। अच्छा?

–ठीक! अभी हम चलता है। आपके कोई साथी पूछें और मुझे देख लिया हो तो कह दें, आत्महत्या नहीं कर रहा था। या कह दें, भाग गया। अच्छा है कह दें, मर गया। किस्सा खत्म! नमस्कार! गुडमार्निंग!

विना प्रत्युत्तर सुने भाग गया।

समुद्र–स्नान के लिए आने वाली मारवाड़ी और सिन्धी महिलाएं धीरे धीरे कुछ गुनगुनाती हुई आने लगी थीं। क्या जाने वह श्रद्धा थी, भक्ति थी, ज्ञान था, या संस्कारों का जड़ित प्रवाह मात्र! लेकिन यह निश्चित वात थी कि प्रशान्त समुद्र ने उनमें से किसी भी रागिनी का तिरस्कार नहीं किया। विशाल वातावरण में सव कुछ अन्तर्भूत हो गया।

पौ फट चुकी थी। अरुणिम उषा की लज्जा मन्द गति से छितरने लगी। चिल्ड्रेन–गार्डन्स के कौवे वोलने लग गये थे। विभावरी वीत चुकी थी।

वडे उत्साह के साथ नीला के घर पहुंचा। किवाड खटखटाये। अन्दर से प्रत्युत्तर में ठहरने के लिए कहा गया। गलियारे के मध्यम प्रकाशमें स्केच देखा, गौरव और संतोष–सा महसूस हुआ।

दरवाजा खुला। तेजी से रात वाले महोदय वाहर निकल कर सीढियों से उतर कर अदृश्य हो गये।

एक व्यक्ति का इस तरह से चला जाना, उसकी सारी कहानी कह गया। जिस विषय में कल वात हो रही थी उसका प्रत्यक्ष रूप यह था! सारा उत्साह तिरोहित हो गया।

जिन चरणों का ध्यान लगाये मैं रात भर समाधि में मग्न रहा, वह यही नीला है? काम–लिप्सा में लिप्त, मास–पुंज! वुद्धिवाद की वातें वघारती है, शहादत की कहानिया कहती है। लेकिन उसका साराश है विलास का उफनता

हुआ आग्रह ! तपस्या कर पाती, तो यह दृश्य उपस्थित नहीं होता । विलास का मोह न होता, तो उसकी वकालात नहीं करती ।

जिसके चरण-रज बन जाने मात्र में संतुष्ट हो रहा था, उसका आलोचक ही नहीं, निन्दक भी हो उठा । नीला ने ठीक ही कहा था, कि सहने की सीमा होती है, और अपेक्षा की भी । वह यहीं समाप्त होती है, यह जान गया हूं।

जिन चरणों की महिमा के इर्द-गिर्द रात भर अथक परिक्रमा लगाता रहा, वह इससे अधिक कुछ भी नहीं है, कि एक पुरुष आता है, रात भर कौंध-कौंच कर चला जाता है । और वह हंस कर अपनी उस सामर्थ्य का बखान करती है, कि यह सब वह भुला चुकी है ! यही होना था, इसलिए उसे होने देती है । लेकिन संसार की सारी स्त्रियां ऐसा ही नहीं करतीं । अन्यथा मेरे जैसे अनाथों से संसार भर गया होता ।

जी में आया कि स्केच को फाड़ डालूं ।

दरवाजा खुला । मुंह से अनजाने में ही निकल गया 'हे प्रभु !' दरवाजे पर माथा टेक कर, थके हुए स्वर में इतना ही कहा, 'अन्दर नहीं आऊंगा । यह व्यतीत साथ ले आया हूं । स्थूल है, यह तुम्हें मेरी याद दिला सके, तो इसे अपने पास रख लो । सोचता हूं, प्रथम-चरण-अर्चना ही मेरे लिए पर्याप्त है । तुम जहां हो, वहां तक मैं पहुंच नहीं सका, इसलिए आज मोह भेंट हो गया । व्यर्थ प्रयत्न शेष हो गये । '

जो कुछ कहा था, उसमें तिरस्कार की भावना नहीं थी । जो महसूस कर रहा था, वहीं कहा भी था । अस्त-व्यस्त वस्त्रों को ठीक करती हुई, बिखरी हुई केश-राशि को संभालती हुई, नीला अजीब से करुण स्वर में बोली—हाथ जोड़ती हूं । अन्दर आ जाओ, राम ।

हतप्रभ-सा दरवाजे पर माथा टेके उसी तरह खड़ा रहा ।

पुकारा—आओ ।

सम्मोहित-सा आगे बढ़ गया ।

हाथ पकड़ कर उसने पलंग पर बैठने को कहा । बैठ गया । विचार आया, यह है वह गंदा बिछौना, जहां जाने कैसा आदमी रात भर अपने जी की गंदगी बिखेरता रहा होगा । नीला को पैसे मिल गये । उसकी ग्लानि समाप्त हो गयी । पर मैं तो इतना सहज-गम्य अनुभूत नहीं । जो काला है, जो पाप है, उसे तर्क पेश कर, पुण्य कह नहीं पाता ।

देखा, नीला सचमुच बुरी तरह से रो रही थी। जरूर कोई अनहोनी बात हुई होगी। एकाएक वह मेरे घुटनों पर सर टेक कर फफक पड़ी। हिचकियों के साथ पूछा—राम, तुम मुझे प्यार करते हो न ?

–उठो नीला। यह क्या कर रही हो ?

–हां या ना मे कहो। तुम मुझे प्यार करते हो ?

–करता हूं।

–श्रद्धा भी ?

–शायद। शायद नहीं।

–झूठ मत बोलो राम। कहो, 'करता हूं, निश्चित रूप से करता हूं।'

–अच्छा। निश्चित रूप से करता हूं।

–मेरे सुख के लिए कुछ कर सकते हो ?

–बस का होगा, तो करूंगा।

–मैं मरना चाहती हूं राम !

यह प्रश्न है या उत्तर, साफ समझ नहीं पाया। इसलिए खामोश रहा। मौत की भाषा गलत है। इसलिए नीला की उस अभिलाषा का समर्थन नहीं कर सका। बोला, 'यह मत कहो।'

कहने लगी, अन्त–बुद्धि का शास्त्र भी गुण–गान करते हैं राम। तब श्रेष्ठ बुद्धि के आने पर अन्त क्यों न हो जाय ? आज तक, 'यह भी नहीं; यह भी नहीं, इतना ही जान सकी। आज जान गयी हूं, कि तुम, सिर्फ तुम ! तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही थी। मिल गये। अच्छा हुआ। तुम्हारे प्यार का सम्बोधन स्वीकार कर चली जाऊं, तो मुक्ति मिल जायगी। अन्यथा, लगता है कि पापों का हिसाब बोझिल हो गया है। उसे अधिक संभाल नहीं सकूंगी। जानती हूं कि मरने की बात कहूंगी तो तुम्हें दुख होगा। लेकिन इस दुख को अपनी नीला के लिए सहना। यह अन्तिम सुख दे दो। कहो 'हां'।

कहा, साफ कहो नीला, तुम्हारी बातें समझ नहीं पा रहा हूं।

वह रोती रही। कुछ शांत हुई तो बोली, अभी–अभी एक आदमी यहां से निकला है। इसने रुपये दिये थे। उस समय प्रेम का नशा था, इसलिए देने में आपत्ति नहीं हुई। आज वह खत्म हो गया है, तो मांगने में इन्हें लज्जा

नहीं। प्रस्ताव है, मुझे किसी और को बेचकर पैसे वसूल करने का। दस हजार का प्रबन्ध मैं नहीं कर सकती। आज के युग में भी यह क्रय-विक्रय होता है। एक गुलाम की तरह ही किसी को बेच दी जाऊंगी। उसने भाव-ताव भी शायद तय कर लिये हैं। इस काया का इतना अपमान सृष्टि-नियन्ता ही देख सकता है! मैं नहीं। तुममें प्यार है, तुम्हारे आग्रह में निर्मलता है। मन की शुद्ध प्रतिध्वनि है। इसे प्राप्त कर, इसे सजोये ही चली जाऊ, ऐसा करो राम।

मैंने अपने को और उसे सभालने की कोशिश करते हुए कहा 'नीला मरना चाहती हो? जीने का उपाय न हो, तो यही ठीक है। मरना गुनाह नहीं, मरने की कोशिश करना अपराध है। अभी-अभी एक पुलिस इन्स्पेक्टर ने यही तो बताया था। यह मत समझना कि मैं आत्महत्या करने जा रहा था। आज तो पहली बार जीवन का मार्मिक स्पर्श प्राप्त हुआ है। जो हो, तुम जीवन का सारांश मृत्यु देखती हो, मुझे तुम पर अविश्वास नहीं। मैं तुम्हारा साथ दूगा। साथ ही चलेंगे। मेरा भी आगे पीछे कोई नहीं। गत-जीवन के इतिहास के प्रति प्रलोभनीय दृष्टि डाल सकू, ऐसा कुछ भी नहीं। नया जन्म यदि होता हो, तो इस जन्म की अतृप्त इच्छाओं के बल पर तुम्हें हमेशा के लिए पा लूगा।'

नीला ने कोई जवाब नहीं दिया। वह रोती रही। उसके आंचल में दबा हुआ मैं सांस नहीं ले पा रहा था। मरने की कठिनाई ऐसी ही होती है, यह जानता था। फिर भी, जब नीला की सिसकी मुझे स्पष्ट सुनायी दी, तो मैंने भर्राए हुए स्वर में कहा, 'नीला अभी तक जिन्दा हू, सांस लेने के लिए हवा आ रही है।'

माथे पर पसीना जरूर आ गया था, लेकिन विश्वास के साथ कह सकता हू कि मरने का डर मेरे किसी भी रोए से प्रकट नहीं हो सकता था।

मुझे छोड़कर, मेरी ओर देखती हुई, वह फिर सुबक पड़ी और गोद में मुह छिपा कर निश्चेष्ट होकर गिर पड़ी। मैंने उठाया नहीं। सोचा, दम घुटने से मौत सम्भव तो है, लेकिन सरल नहीं।

मेरी आखों में भी बरबस आसू छलक आये।

एक रो रहा था आत्म-ग्लानि से, और दूसरा रो रहा था सौभाग्य के इस वक्र कोण पर, जिसके स्थायित्व पर विश्वास करने का कोई कारण नहीं।

उस दिन इस जीवन की कथा वहीं समाप्त हो गयी होती, तो भावी दुखद अन्त भुगतना न पड़ता!

अस्तु। मरने का प्रोग्राम किसी न किसी प्रत्यक्ष, अथवा अप्रत्यक्ष कारण से डिसमिस हो गया। वह बेहोश पड़ी रही। होश में आयी, तो पहला प्रश्न यही पूछा, तुम कहीं गये तो नहीं, राम?

–नहीं। यहीं हूं।

–कहीं जाना मत। मुझे डर लगता है।

–नहीं जाऊंगा।

–मैं जीऊंगी, राम।

–मैं तुम्हारे साथ हूं, नीला।

–सिर फटा जा रहा है, जरा दवा दो तो भाई!

दिन भर बैठा उसकी सेवा करता रहा।

पांच :

नीला और मेरे बीच व्यवधान की जो दीवारें थीं, वे धीरे-धीरे टूटती जा रही हैं। लगता है कि जीत मेरी ही है, लेकिन नीला की पराजय के सम्मुख वह गौरवशाली नहीं बन पायी।

कुछ स्वस्थ हुई, भावावेग समाप्त हुआ तो मैंने धीरे से पूछा, 'अब क्या करूं?'

वह चुपचाप मेरी ओर देखती रही।

–तुम थक गयी हो। चाय बना दूं?

वह सीधी लेटी हुई थी। मैं पास ही बैठा था। मेरी ओर करवट बदल कर उसने कहा, 'रहने दो। तुम इसी तरह पास बैठे रहो।'

–अच्छा तो दूध ही पी लो। पैसे हैं? ले आऊं?

तकिये के नीचे से टटोल कर उसने दस रुपये का एक नोट निकाला। नोट को देखती रही, धीरे से बोली, दूध के लिए तो पैसे नहीं हैं राम। ये रुपये हैं; पर इनसे लाया हुआ दूध ताकत दे सकेगा, यह छल ही है। इसे फाड़ कर फेंक दे!

मैं कुछ विचलित हुआ। बोला, फाड़कर फेंक देने से क्या होगा, इसे किसी गरीब को न दे दूं?

—नहीं। नहीं, राम। इन रुपयों को देकर पुण्य की आशा मत करना। अपवित्र दान से दानी को पाप ही लगेगा। इसे अपवित्र मान रही हूं, तो इस घिनौने दान की बात नहीं करूंगी।

सहज भाव से मैंने उसके आदेश का पालन किया। नोट फाड़ कर फेंक दिया।

एक बात समझ में आयी, मुझे दया के प्रति क्रोध है, नीला को अहंकार के प्रति क्षोभ। आवरणों से सम्भवत- नीला परिचित है, आज तक उन्हें भुलावा देकर, मान्यता देती आयी थी। अब उन सबको फाड़ डालने के लिए प्रस्तुत है। लेकिन आगे अहंकार-विहीन नीला कैसी होगी, यह कल्पना नहीं कर सका।

फिर भी सोचता हूं, जिस दया के प्रति मेरे मन में संचित घृणा है, वह नीला की छांह में स्वस्थता प्राप्त कर लेगी।

नीला की सेवा करने के लिए पैसे चाहिए। उसके पास नहीं हैं। और मेरे पास? सवाल ही व्यर्थ है।

याद आया, कल जो पुलिस-इन्स्पेक्टर मिला था, वह अपनी तस्वीर बनवाना चाहता था। बनाऊंगा, तो कुछ पैसे ले सकूंगा। नीला से कहा, 'ठहरो नीला। मैं अभी आया। कुछ न कुछ इन्तजाम करके ही आऊंगा। यह मत समझना, कि गरीब राम पैसा पा नहीं सकता। आज पहली बार तुम्हारे लिए ही कमाऊंगा। गुरु-दक्षिणा दिये बिना दीक्षा सम्पूर्ण नहीं होती।

नीला मुसकरायी। निढाल-सी पड़ी रही।

सुबह की क्लास के तमाम विद्यार्थी बाहर खड़े गपशप कर रहे थे। कैन्टीन में अच्छी-खासी भीड़ थी। मैं इनमें वैसे भी शामिल नहीं हो पाता और आज तो उस पुलिस इन्स्पेक्टर की प्रतीक्षा कर रहा था।

दरवाजे के पास चुपचाप खड़ा मैं सड़क की ओर देख रहा था।

पास ही एक और लड़की किसी की प्रतीक्षा कर रही थी।

समय हो गया। लेकिन हम दोनों वहीं खड़े रहे।

पुलिस इन्स्पेक्टर नहीं आया। मैं निराश होता जा रहा था। देखा, उपस्थित लड़की जिसकी प्रतीक्षा कर रही है, वह भी सम्भवतः नही आया। हम दोनों की निगाहें जब कभी आपस में मिल जातीं, तो अनजाना सवाल आंखों ही आंखों में तैर जाता—'तुम किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो?' प्रत्युत्तर में स्वयमेव नजरें झुक जातीं।

देर होती जा रही थी, लेकिन फिर भी विश्वास था कि इन्स्पेक्टर महोदय आयंगे। लेकिन वह सम्भवतः बिलकुल निराश हो गयी।

उसके बारे में याद करने लगा, 'कौन है?' स्मृति में इतना ही समा सका, कि मेरे साथ ही पढ़ती है। नाम नहीं जानता। जानने की अभद्रता कभी की भी नहीं।

अन्त यों हुआ कि वह मेरे पास आयी। कहा, आप फोर्थ-ईयर में ही हैं न? आज क्लास में नहीं जा रहे हैं?

–क्लास में जाने से पहले किसी से मिलना जरूरी है। उसी का इन्तजार कर रहा हूं। आप भी फोर्थ में ही हैं?

'–देखिये। बात यह है।' संकोच सहित उसने कहा 'मेरी बहन है सोना, आप उसे जानते हैं?'

–नहीं।

–एक काम कीजियेगा? २४३५ बी० एम० की कार यहां आयेगी। यह पर्स उसे दे दीजियेगा। मैं क्लास में जाती हूं।

–और न आयीं तो?

–तो, मैं आपसे ले लूंगी।

–लेकिन आप अनजाने आदमी पर रुपये पैसों का इतना भरोसा कैसे कर रही हैं?

–औरतें इस तरह का भरोसा करके भी नुकसान में नहीं रहतीं, यह जानती हूं,।' उसने हंस कर कहा। उसकी हंसी के साथ मैंने देखा कि वह बहुत सुन्दर है।

मेवा कहगा, यह आश्वासन देकर, पर्स मैंने ले लिया। हस कर ही कहा, जिनको यह पर्स देना है, उनसे अधिक मुझे इसकी जरूरत हो सकती है, और तब ये रुपये मैं खर्च भी कर सकता हूं। मैं तो, खैर, आपकी सेवा कर ही दूंगा। लेकिन किसी गरीब को इतने रुपये देकर, फिर कभी उससे ईमानदारी की अपेक्षा करके अपना अज्ञान मत प्रकट कीजियेगा।

–अधिक नहीं हैं। सिर्फ दस–एक रुपये हैं। आप दे सकें, तो रख लीजिये नहीं तो लौटा दीजिये। मैं खड़ी–खड़ी थक गयी हू।

सचमुच मेरी नीयत साफ नहीं थी और न उसके लिए लज्जा ही थी कहा, 'अच्छी बात है।' और पर्स रख लिया। वह चली गयी।

समय गुजरता गया। मैं अब एक के बजाय दो महात्माओं की प्रतीक्षा करता वहीं खड़ा रहा।

लगभग आध घण्टे बाद एक कार आयी। नम्बर मिलाये। वही थी। खिड़की मे झांक कर पूछा, 'मिस सोना आप ही हैं?

–यस।

–आप से काम है। आपकी बहन यहां प्रतीक्षा कर रही थीं। वह तुरन्त नीचे उतर आयी।

मैंने कहा, 'आपको देने के लिए वे यह पर्स दे गयीं हैं।' कह कर भी पर्स मैंने उनके हाथ में नहीं दिया। कहा 'इसमें 'सिर्फ' दस बीस रुपये हैं। बताइये तो, रुपये पैसे के मामले में, अनजाने आदमी पर भरोसा करके उन्होंने अच्छा नहीं किया न?'

वे चुप रहीं।

'सचमुच मेरी नीयत बिल्कुल साफ हो, ऐसी बात नहीं।' मैंने उनकी ओर गौर से देखा कि वे मेरी बात सुन समझ रही हैं या नहीं?

पूछा, आप नीला को जानती हैं?

–मोडेल!

–हां वही। वह बीमार है। उसके लिए रुपये चाहिए। आप पर अनजाना विश्वास करके ही कह रहा हूं, कि मैं उसका आत्मीय हू। इसलिए रुपयों की चिन्ता है। आप इसमें से कुछ दे सकती हैं? वापस जल्दी लौटा सकूंगा, ऐसा भरोसा मत कीजियेगा। आप शायद जानती हों कि स्कूल की लाइब्रेरी की

जिल्द-साजी से मुझे मासिक सिर्फ तीस रुपये मिलते हैं। जो आपके 'सिर्फ दस रुपये' से कुछ ही अधिक होते हैं।

वह चुपचाप सुनती रही।

भावुक आदमी अधिक बोलने में समर्थ होता है। उसे अपने बारे में बहुत कुछ कहना होता है। कभी-कभी वह सीमोल्लंघन भी कर जाता है। जो हो, यह देवी भली थी। विना वोले सुनती रही। इतना ही कहा, 'पर्स मुझे दे दो। रुपये रख लो। इन रुपयों के लिए अपनी ईमानदारी मत बेचना।

इससे पहले कि मैं कोई जवाब दूं, पुलिस इन्स्पेक्टर महोदय आ गये। मैंने पर्स और रुपये दोनों उन्हें लौटा दिये। इन्स्पेक्टर साहब को नमस्कार किया। बताया कि सुबह से उन्हीं का इन्तजार कर रहा हूं।

बड़े तपाक से मिले। मेरे कंधे पर हाथ रख कर, उस देवी के साथ बातचीत करते देख कर मुसकराये भी।

-'बस अब मुझे मजदूरी मिल जायगी।' मैंने कहा। सोना को नमस्कार कर, बिना यह देखे कि उसके चेहरे पर इस अजीब और व्यर्थ सी, घटना का क्या प्रभाव पड़ा, मैं इन्स्पेक्टर साहब के साथ चल दिया।

उन्होंने अपना नाम बताया, श्री जोगलेकर। लम्बे-चौड़े, कद्दावर महाराष्ट्रीय जवान थे। चेहरे से रौब टपकता था। साथ चल रहा था, तो कइयों की निगाहें बरबस मेरी ओर उठ जाती थीं। लगता था, जैसे किसी अपराधी को लिए जा रहे हों। रास्ते चलते उन्होंने सिगरेट सुलगायी। मेरी ओर केस बढा कर बड़े अन्दाज से कहा, 'शौक फर्माइये।'

-धन्यवाद। पीता नहीं हूं।

-कुछ पिये बिना कोई आर्टिस्ट, 'आर्टिस्ट' हो ही नहीं सकता। अभी तक बच्चे हो। थोड़े दिनों बाद तो कुछ न कुछ पीना ही होगा।

उन कलाकारों की जीवनिया याद आयीं, जो नशे में खोये बिना, अपने को भुलाये बिना, अपने 'सुप्रीम', अपने उद्दात्त को पा ही नहीं सके। हंस कर इतना ही कहा, 'अभी वहां तक पहुंचने में बडी देर है।'

वे धुआं उड़ाते रहे। लगा कि इस में उन्हें बड़ा आनन्द आ रहा है। रास्ते चलते एक रेस्टोरेंट के मालिक से उन्होंने धीरे से घुस्पुस की, हंस कर हाथ हिला कर किसी खास बात के लिए सहमति प्रकट करते हुए वे मेरे साथ चले आये।

घर स्कूल से दूर नहीं था। पहले जहा पेइंग–गेस्ट के रूप में रहता था, उससे दो बिल्डिंग्स छोड़ कर ही उनका मकान था। शानदार सजा हुआ फ्लेट प्रवेश करते ही मालूम होता था कि यहा कोई दिल और जेब से रईस आदमी रहता है। अनुमान लगाया, या तो घर के सम्पन्न हैं, अथवा तनख्वाह मे मोटी रकम प्राप्त कर लेते है। दोनों अवस्थाओं में पैसे की कीमत उनकी निगाहों में अधिक नही। उछाल कर उसकी चमक और दमक दोनों देखने में समर्थ। सोचा, कोई बड़ी बात नहीं, यदि चार–पाच रुपये बिना किसी हिचकिचाहट के दे दें।

सोफे पर बैठ गया। उन्होंने नौकर को बुलाकर चाय लाने का आदेश दिया। पहली बार इतनी आवभगत हो रही थी। सो वहा बैठने में बड़ी तृप्ति मिली। भूल–सा गया कि यह सब जिसके लिए कर रहा हू, अथवा जिसके भाग्य–नक्षत्रों के बल पर यह जो सम्मान मिल रहा है, वह स्वय बिस्तर पर पड़ी, मेरा इन्तजार कर रही होगी।

याद आया तो पूछा, साहब, स्केच बनाना शुरू कर दू ?

–इतनी जल्दी नहीं है। चाय आने दो। खाना खाओगे ?

जी किया कि कह दू कि जो खाना खिलाना चाहते है, वह दे दें। अब मुझे सिर्फ अपना ही इन्तजाम नहीं करना है, बल्कि आज किसी और के लिए भी जिम्मेवार हू। आज तक नीला का तिरस्कार ही करता रहा हू, कि वह गलत रास्ते पर है। उसे सही रास्ता बताने और वहा उपस्थित होनेवाली कठिनाइयों मे साथ भी दूगा। एकाएक घर-गृहस्थी की जो जिम्मेवारी आ गयी थी, मैने उसका स्वागत ही किया है। इसीलिए तो खाने की बात आते ही नीला के बारे में सोचने लगा। उसका भी तो इन्तजाम करना है। लेकिन यह सब उन्हें कह नहीं सका। न निमत्रण ही स्वीकार कर सका।

तभी उनकी श्रीमती ड्राइग रूम मे आ गयीं। उन्हें देखते ही उन्होंने हस कर इतना ही कहा, 'है न ?'

स्वीकृति में श्रीमती की प्रसन्नता प्रगट हो गयी।

मैं आदर के साथ खड़ा हो गया।

बोलीं, बैठो।

बैठ गया।

क्या करू ? यह नहीं समझ पाया तो कागज पसार दिये। पूछा बनाऊ ?

–अच्छा।

वे स्थिर होकर सामने बैठ गये।

घंटे भर में कागज पर पेंसिल दौड़ाता रहा।

बीच में चाय आयी; उन्होंने इशारे से मना कर दिया। ताकि व्यवधान, डिस्टर्वेन्स न हो। नौकर वापस चला गया। श्रीमती पास हीं बैठीं अपलक नेत्रों में मेरी ओर देखती रहीं।

रिटचिंग–फिनिशिंग से फ़ारिग हुआ तो चाय आयी। कुछ बिस्किट भी थे। खा गया। चाय पी। भूख मर–सी गयी। संतोष हुआ।

श्री जोगलेकर ने स्केच देखा। खुश हुए। श्रीमती ने भी देखा, उन्होंने नौकर को बुला कर उसे दिखाया। फिर पूछा, 'मेरा भी स्केच बना दोगे?'

–बना दूगा।

–कब बनाओगे?

–आज नहीं। फिर, आप कहें तब।

उन्होंने अधिक बहस नहीं की।

कहा, कल आऊगा।

पता पूछा तो नीला के घर का पता बता दिया। उन्होंने अपनी डायरी में नोट कर लिया।

चलने लगा तो अत्यन्त झिझक के साथ मैंने दो–तीन रुपये मांगे।

भले आदमी थे। पाच रुपये दे दिये।

कला के बल पर यह पहली आमदनी थी।

रुपये पास थे, सो भूख लगी। नीला के पास तुरन्त पहुंचने के लिए उतावल भी हुई। रास्ते में मोसम्बिया ली। दूध लिया। बस मे बैठकर घर पहुंचा।

नीला स्नान कर चुकी थी। बाल सुखा रही थी। मुझे देखा तो माथे पर पल्ला ओढ़ लिया।

मैंने सारा सामान टेबल पर रख दिया। पुस्तकें उठाकर आलमारी में रखीं। मोसम्बियों का रस निकालने बैठा। वह स्टोव जलाने लगी, तो मैंने मना कर दिया। खुद ने जलाया। वह पास बैठी देखती रही। गर्म दूध प्याले में डालकर उनके सामने रख कर आदेश दिया, पीयो।

दूध पीकर जैसे उसे बड़ा संतोष मिला हो। बोली, राम मेरे पास बना रह। तू कहेगा वैसे ही करूंगी। जीऊंगी, और तू कहेगा वैसे ही जीऊंगी।

'जीना तुम अपने तरीके से' मैंने कहा, 'तुम्हें जीने के तरीके समझाने की काबलियत मुझमें नहीं है। तुम पर आदेश चलाया करूं, ऐसी स्पर्द्धा नहीं। अच्छा, अब जाओ, लेट जाओ। अच्छी तरह से नींद ले लो। सब ठीक हो जायगा।

लेट गयी, तो मैं पैताने जाकर बैठ गया। कहा, 'नीला जिन्दगी भर परायी दया और कृपा ही पाता रहा। विवश था। तुम भी कुछ-कुछ ऐसी ही जटिल ग्रंथियों से दुखी हो। तुम उसे अहंकार कहती हो। इसे स्पष्ट रूप से मैं जानता नहीं हूं। लेकिन यही दो मूल-पीड़ाएं ऐसी हैं कि हमारी कड़ी आपस में जुड़ी हुई है। तुमसे यह जान सका हूं कि अहंकार गलत है, और दान-दया भी। असली सत्ता को मैं पहचानता हूं, यह तो नहीं कहता। लेकिन जो मिथ्या है, उससे सजग रहने में तुम मेरी मदद करना।'

नीला अपने हाथ में मेरा हाथ लिये, खेलती रही।

मैंने कहा, नीला, जिसका आज स्केच बना आया हूं, उस इन्स्पेक्टर की पत्नी ने अपना स्केच बनवाना चाहा है। वह भी पांच रुपये देगी। वे कोई ऊंचे दर्जे के अफसर हैं। जान-पहचान, बहुत होगी ही। कहूंगा, तो कृपा करके कोई नौकरी लगवा देंगे। सौ-रुपये तक की बंधी आमदनी हो जाय, तो तुम्हें फिर किसी बात की फिक्र करने की जरूरत नहीं। सच कहता हूं, नीला, स्कूल में तुम्हारा मोडेल के रूप में जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। तुम मेरी ही मोडेल बनी रहना। मैं सारे आवरणों के बावजूद भी पहचान लगा कि मौलिक क्या है? यह सिर्फ प्रार्थना की जिद ही नहीं, बल्कि वास्तविक जीवन की शर्त है। इसे तो मानना ही होगा। यदि ऐसा तुम ठीक समझती हो, तो ऐसा ही करो। यह तुम्हारे अधिकार की मान्यता है। वह अधिकार नहीं, जिसकी कोई मांग करे, अथवा कर सके, बल्कि वह जो, जोर देकर दिया जा सकता है।

नीला ने बिलकुल भोली बन कर अन्तम की बात कही, "तेरे 'चरण-रज' चित्र में एक संशोधन कर दे। चरण दो ही नहीं होते, उनके साथ दो और होने चाहिए। अन्यथा उनकी क्रिया महत्वपूर्ण और आदर्श नहीं हो सकेगी।

"ऐसा लगे कि दो व्यक्ति साथ-साथ चले जा रहे हैं। पद चिह्नों की कोई पूजा करेगा या नहीं, इसकी चिन्ता करने की, आगे बढ़नेवालों को कोई परवाह नहीं।"

उत्साह और उल्लास से मेरी आंखे चमकने लगीं। कहा, ऐसा ही होगा। केवल कल्पना और रेखाओं द्वारा ही नहीं; जीवन में भी। हम साथ ही रहेंगे, साथ ही जीयेंगे, साथ ही मरेंगे।

कुछ रुक कर कहा, "आज प्रतिज्ञा करता हूं नीला, कि मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहूंगा। भीष्म-पितामह की तरह किसी को राज्य देने मात्र के लिए नहीं, बल्कि अपनी वर्तमान स्थिति की सुरक्षा के लिए। संसार की कोई शक्ति इस राम को नहीं झुका सकेगी। कोई नहीं। याद है, नीला तुम्हें, एक दिन राम ने समुद्र को ललकार दिया था कि वह उसका रास्ता छोड़ दे, और समुद्र पीछे हट गया था।

"यह नहीं कहता नीला, कि जो भगवान करता है, वही होता है। कहता हूं यह, कि आदमी जो चाहता है, वह होता है। लेकिन आदमी भी कितना दयनीय है, वह चाहता ही तो नहीं; मजबूती के साथ, जब उसने जिस चीज की मांग की है, उसका मूल्य दिया है, उसे मिला है।"

नीला के होठों पर मुसकराहट फैल गयी। बोली, जो मैं तुम्हारे लिए अच्छी सी दुलहन ला दूं तो?

-ऐसा नहीं कर सकोगी नीला। दुलहन और दुल्हे का रिश्ता चिर-पुरातन है, चिर सनातन; ऐसा सुना है। पर इससे भी कहीं ऊंचे दर्जे का, इससे भी कहीं पवित्र, इससे भी आवश्यक एक सम्बन्ध होता है, जो तुम्हारी छांह के नीचे बिताया जा सकता है। जिसमें युग सिर्फ पांच मिनट का होता है। जहां एकात्मकता इतनी प्रबल हो, जीवन की सीमाएं इतनी स्पष्ट हो एक दूसरे की पूरकता इतनी अनिवार्य हो, वहां ब्याह रचाने, दोनों को विभक्त कर भोगने की फुर्सत कहां होगी!

"फिर भी अंतिम सांस में वह जो संतोष प्राप्त कर सकेगा, उसे ब्रह्मा समस्त सृष्टि का निर्माण और विध्वंस करके भी नहीं प्राप्त कर सकता। इस प्रतिज्ञा की कभी हंसी मत उड़ाना। न इस पर बहस ही करना। क्योंकि यहां बहस हार जाती है। यह उससे परे की चीज है। बल्कि कभी विचलित होऊं, तो सावधान करना।

"अब फिर पछताती हू राम। तुम्हें समझना सरल नहीं है। अब जिन्दगी भर तुम्हे ही बूझना होगा।" उसने हसते हुए कहा, "अभी तो भविष्य का विधान बना रहे हो। हरएक चीज अपनी जिद्द से ही तय करोगे, तो मैं इस विधान पर ही संदेह करने लगूगी।"

–तो ?

–सोचो तो, जो मैं ब्याह रचा लूं ?

एकाएक इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका। रुक कर कहा, "डराओ नही नीला। तुम जो करती हो, करोगी, उसी से मेरा जीवन बनेगा, बिगड़ेगा, यह तुमसे किसने कहा ? यदि कभी ऐसी बात हुई भी, तो मुझे दुखी होना होगा, ऐसा तो नहीं सोचता। इसलिए कि जहां प्रलोभनीय ऐसा कुछ हो ही नहीं, वहा दूसरों की प्राप्ति पर असंतोष हो, यह तो कोई बात नहीं हुई। फिर भी, यदि मेरे सामने कभी ऐसा प्रलोभन आया तो, तो तो भी अपनी प्रतिज्ञा भग नहीं करूगा। तुम जितनी, और जैसी प्राप्त हो गयी हो, वही सतोष के लिए पर्याप्त होगा। इससे अधिक भविष्य की कल्पना मुझसे नहीं होती।

–मै तो कर सकती हू।

–वहस मत करो नीला। जीवन को विशिष्ट ढंग से बिताने का आज संकल्प लेता हू। मैंने मन ही मन कहा—'आशीर्वाद दो कि इस प्रथम निश्चय मे असफल न होऊ।'

छ •

भीष्म-पितामह से विवाह करने के लिए कई राजकुमारियां प्रस्तुत थीं; इसलिए भी उनके अखण्ड-ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा आज भी जयजयकार करती हुई पहरा रही है। लेकिन मुझसे विवाह करने के लिए कौन राजी है ? फिर मेरी यह प्रतिज्ञा क्या हास्यजनक नहीं है ?

लेकिन, जिसके पास कुछ हो, वह उसका त्याग करे, उससे भी अधिक बड़ा वह है, जिसके पास कुछ भी न हो, और वह त्याग दे।

बचपन में कहीं सुनी, एक कहानी याद है, किसी ने अपनी मां के श्राद्ध के सिलसिले में एक ब्राह्मण को न्योता दिया और दक्षिणा में अपने वजन का सोना उसके सामने रख कर कहा, 'सुन ब्राह्मण, मेरे जैसा दानी तुझे नहीं मिलेगा, जो इतना धन, श्राद्ध की दक्षिणा में दे दे।' इस पर ब्राह्मण देवता ने उस सोने की ढेरी को लात मारते हुए कहा, 'तो सुनो यजमान, तुम्हें भी ऐसा ब्राह्मण नहीं मिलेगा, जो इस विशाल ढेरी को लात मारकर, इसे तुच्छ समझ कर, चला जाय।'

अपने को उस ब्राह्मण की जगह रख कर ही तो मैं नीला के सामने अखण्ड-ब्रह्मचर्य की बात कह गया हूं। यदि कभी किसी ने इतनी बड़ी कृपा की, कि विश्व की अद्वितीय सुन्दरी को मेरे सामने प्रस्तुत करके कहा, 'सुन रे राम, यह है तेरा परम-सौभाग्य। ले।'

तब अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, हंसकर, दृढता के साथ उसे ठुकराते हुए कहूंगा, 'सुनो, तुम्हारी इस महती कृपा को भी मैं अत्यन्त तुच्छ समझता हूं।'

मगर अपने सामने झूठ भी कैसे बोलूं? अपनी प्रतिज्ञा को इस रूप में पेश करने का एक और कारण था, जिसे आज समझ पाया हूं—उसके शारीरिक विलास का तिरस्कार। अपनी अडिगता की चोट।

स्त्री और पुरुष का तो सनातन रिश्ता है। संदेह नहीं, नीला स्त्री है, मैं पुरुष। नीला के सामने स्वयं बिन्दु मात्र हूं, इसलिए विराट के सम्मुख स्थिर नहीं। स्त्री के सम्मुख पुरुष तुच्छ रहे तो वह उसका अधिकारी नहीं, उसका कृपाकांक्षी है। जो कृपाकांक्षी है, उससे सनातन रिश्ते का कोई सम्बन्ध नहीं।

जिस व्यक्ति ने जीवन के लम्बे अर्से तक कुछ भी प्राप्त नहीं किया हो, वह किस पूंजी के बल पर इतनी बड़ी धरोहर को संभालने की कल्पना करे?

इसलिए कृतज्ञता-पूर्ण अनुराग के अतिरिक्त अधिकृत प्रेम का दावा मैं कभी कर नहीं सका। मेरी इस कृतज्ञता को उसने स्वीकार कर लिया, मैं इसी में अपने को अन्त तक सार्थक समझता रहा।

लगा कि जैसे अखण्ड-ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा से अपनी विशिष्टता की जो घोषणा कर गया हूं, उससे कुछ जिम्मेवारियां अनुभव हो रही हैं,—जैसे अपनी ही नजरों में उछल कर फूल गया हूं।

—वह भी तुम्हारी तरह अकेली है ?

—हां, अकेली, बिलकुल अकेली !

—कुछ काम करती है ?

—अब नहीं करेगी। अब तक करती थी। मैं कमाने जो लगा हूं। एक बात बताइये, आप मुझे कोई नौकरी दिला सकती हैं ? मैं अंग्रेजी जानता हूं, हिन्दी भी। ड्राइंग तो आप देख ही चुकी हैं। किसी भी तरह का काम हो, महीने के सौ रुपये मिल जाय, तो हम दोनों के लिए बहुत होंगे।

—मैं उनसे कहूंगी। तुम बता रहे थे न, तुम्हारी बहन कहीं काम करती है। उसका क्या हुआ ?

—स्कूल में न्यूड-मोडेल थी। यह मुझे अच्छा नहीं लगता। सो चाहता हूं कि वह इसे छोड़ दे। मेरा इन्तजाम हो जाय, तो वह छोड़ देगी।

—न्यूड मोडेल ? हिन्दुस्तान में भी ऐसा होता है ?

—होना चाहिए। इसलिए होता तो है ही।

—छि छि सारे लड़कों के सामने एक औरत इस तरह नंगी खड़ी होने से पहले लाज के मारे मर नहीं जाती ?

—उस समय तो नहीं। इसके पहले और बाद में मरने के कई मौके जरूर आ जाते हैं।

—उसी के साथ तुम रहते हो ?

—हां।

—ऐसी लड़कियों के साथ रहना अच्छा नहीं राम ! पता नहीं, और भी वे कैसे-कैसे गंदे काम करती हों ?

—गंदे ? उन्हें आप भी गंदे कहती हैं ! मैं भी ऐसा ही कहता हूं। लेकिन वह कहती है, अब वह यह सब पैसे के लिए नहीं करेगी। कोई वेश्या इसलिए तो बुरी मानी जाती है कि वह पैसे के लिए अपने शरीर को बेचती है ! जब मैं कमाने लग जाऊंगा तो पैसे की कमी नहीं रहेगी। फिर वह ऐसा काम क्यों करेगी ! कोई भी अपनी इच्छा से वेश्या थोड़े ही होती है !

—राम। वेश्या कैसे होती है, सो मुझे मालूम नहीं। मालूम करना भी नहीं है। इतना ही कहती हूं कि तुम्हारे जैसा आर्टिस्ट मेहनत करके कमाये, और वह आवारा लड़की मौज करती फिरे, यह अच्छी बात नहीं। मेरी मानो, यहीं आ जाओ।

नीला के प्रति जो तिरस्कार वे व्यक्त कर चुकी हैं, उसके बावजूद उनसे किसी प्रकार की सहायता की उम्मीद नहीं की जा सकती। कृपा की समस्त करुणा तिरोहित हो गयी। उठ खड़ा हुआ। कहा, आपके प्रति कृतज्ञता की सीमा नहीं है; लेकिन आप नीला का अपमान करें, यह सह नहीं सकता। मेरे नमस्कार स्वीकार करें। चलता हूं।

कागज वहीं छोड़, उठकर चलने को हुआ, तो उन्होंने अधीरता से रोक लिया, कहा, 'ऐसे मत जाओ। यहा बैठो।'

रुक गया।

–मेरे साथ आओ।

गया। एक आल्मारी के पास जाकर वे खड़ी हो गई। दरवाजा खोल कर उसमें से एक अलबम निकाला। चार-पाच वर्षीय एक बालक के अगणित फोटोग्राफ्स लगे हुए थे। ऐसा लगा कि मेरा चेहरा उस बालक से मिलता-जुलता-सा है। मैंने सिर उठाकर उनकी ओर देखा। वे मेरी ओर एकटक देख रही थीं। सजल नयन।

मैं सोफे पर धप से बैठ गया। एक भीषण विचार माथे में तूफान की तरह सनसनाने लगा, मैं इन्ही का पुत्र तो नहीं हूं? ऐसा होता है, कि अनैतिक रूप से उत्पन्न बालकों को अनाथ कह कर छोड़ दिया जाता है। करुण स्वर में उनका हाथ पकड़ कर रोते हुए कहा, मां. तुम .मां!

एलबम मेरे हाथ से लेते हुए उन्होंने कहा, हा राम, यह मेरा लड़का था। १२ साल से भी अधिक हो गये, वह चला गया। देखो न, तुम्हारा चेहरा उससे कितना मिलता है?

देख गया। भाप उड़ गयी। विचार तिरोहित हो गये। जान गया, मैं उनका लड़का नहीं हूं। जो था, वह अब इस संसार में नहीं है, जो है, उसे वे टटोल रही हैं। प्रेम के इस अतिरिक्त कारण को जान कर करुणा शेष हो गयी।

उन्होंने कहा, इसके बाद आज तक कोई शिशु इस घर में नहीं आया। आज तुम आये हो, केवल तुम! और तुम भी इस तरह अपमान करके जा रहे हो।

समझा। कहा, मां, जो मेरा चेहरा ऐसा नहीं होता तो?

–ऐसी बहस मत करो राम।

उन्हें जो अच्छा न लगे, वह मेरे द्वारा प्रस्तुत न हो, यह चाहता हू । मो बहस नहीं की । चुप हो गया ।

मिसकियों के स्वर में वे कहती रहीं, 'तुम जा रहे हो, जाओ । रोकूंगी नहीं । लेकिन कुछ देर के लिए बैठ जाओ । मां का दिल ऐसा ही पगला-सा होता है । न हो, स्केच ही बनाओ । लेकिन वादा करो, फिर आओगे ।

कहा, आऊंगा । बहस भी नहीं करूंगा । लेकिन एक बात कहूंगा, नीला का अपमान मुझसे सहा नहीं जायगा ।

इतना कह कर चुप हो गया । एक साथ इतनी घटनाएं स्थूल रूप मे माथे में चक्कर काट गयीं कि उन्हें भुलाने के लिए सोफे के पीछे माथा टेक कर मैंने आंखें मूद लीं ।

मेरे माथे पर हाथ फेरती हुई वात्सल्य पूर्ण स्वर में उन्होंने कहा, राम तुम्हारी नीला को भी बेटी कहूंगी, मुझे उससे मिला दोगे ?

–बेटी कहने के बाद भी अपमान नहीं करने दूंगा ।

–अच्छा । प्यार तो कर सकूंगी ?

–कर सकोगी ? इसी की तो उसे जरूरत है । संसार के हर आदमी को जरूरत है । आओ, चलो मेरे साथ । तुम देखोगी तो मुग्ध हो जाओगी । ऐसी है वह । प्यार करोगी, तो वह तुम पर न्योछावर हो जायगी । पन्द्रह-बीस मिनट मे ही हम घर पहुच जायगे ।

जैसी थीं, वैसी ही तैयार हो गयीं । चलीं । पूछा, मकान कहां है ?

–नजदीक ही है । मलाबार हिल ।

एच० म्ट बस में बैठकर नीला के यहां पहुचे । कहू, अपने घर पहुचा ।

नीला 'चरण-रज' चित्र को फ्रेम में लगा रही थी । मेरे साथ एक अन्य महिला को देखकर, उसने सारा सामान एक ओर रख दिया । स्वागत और अभ्यर्थना के लिए उठ खड़ी हुई ।

मैंने कहा, मां है ये । प्रणाम करो उन्हें ।

मेरी इस धृष्टता पर एकबारगी शायद वे मुसकरायीं । नीला ने झुक कर कुल-पुत्री की तरह प्रणाम किया । उन्हें पलग पर बैठने का संकेत करते ही, चद्दर के मैलेपन को देखकर वह शर्मा-सी गयी । मैंने नीचे रखे संदूक से नयी धुली हुई चद्दर निकाली । बिछायी । कहा, 'बैठिए । यह है, हमारा घर !'

नीला ने कहा, तुम्हें देखने के लिए आयी हैं। कल इन्होंने ही वे रुपये दिये थे। श्री जोगलेकर पुलिस में किसी बड़े ओहदे पर हैं।

फिर झुक कर उसके कान के पास जाकर धीरे से कहा, इनके मृत-पुत्र से मेरा चेहरा हू-ब-हू मिलता है।

अन्नपूर्णा से कहा, हम दोनों को शुद्ध स्नेह की जरूरत है मा! और आपके पास है ममता का अखण्ड भंडार! यह है नीला, मेरी बहन, इतने बड़े संसार में, इस अनाथ व्यक्ति की एक मात्र अपनी, नीला।

अन्नपूर्णा-मा ने नीला को खींचकर अपने पास बैठा लिया। नीला का आंचल खिसक आया था। उसे ठीक कर, वह चुपचाप बैठी रही। शायद उसकी आखें छलछला आयी थीं।

बाद में उसने एक दिन कहा था, 'राम, तेरे कारण सोचती हू, जीवन को भिन्न जमीन पा सकूंगी।'

उस समय अन्नपूर्णा-मा ने कहा, 'नीला, इस राम को मुझे दे दे। अच्छा लड़का है। सो गोद ले लूगी।'

तो नीला ने हंसकर कहा, 'दे तो दूगी, पर एक शर्त है मां!' कुछ रुक कर बोली, 'इसका ब्याह कर दो। तो, तुम्हें सौंप कर अकेली रहने का दुख नहीं रहेगा।'

—उसकी फिक्र तू मत कर।

—उसी की तो फिक्र है! कल ही न जाने कैसी अजीब सी प्रतिज्ञा इसने की है।

—क्यों राम? जिसे एक मात्र अपनी नीला कह रहा था, उसी की बिना आज्ञा के तू प्रतिज्ञाएं कर लेता है?

—ऐसी बात तो नहीं है। लेकिन जो कुछ करता हू, बस उसी से इसे विरोध होता है। मैं क्या करूं?

—सुनूं तो। कल क्या प्रतिज्ञा की थी?

मैंने जरा तन कर, सिर ऊंचा उठाकर, दृढता-पूर्वक अपनी प्रतिज्ञा दुहरा दी। कहा, इसे छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगा।

मुझे हृदय से लगा कर वे बोलीं, इतनी बड़ी प्रतिज्ञा इस उम्र में शोभा नहीं देती राम। अभी तो तू ऐसी बात करने लायक भी नहीं हुआ।

लगती, कि भावनाओं के आवेश में पद-चिह्न बन जाते। लोग इसे कला कहें, माँ अन्नपूर्णा गौरव करे, और देखे कि मुझे इससे यश मिलता है।

वाटर-कलर्स मे ही सारे चित्र तैयार किये गये थे। इसलिए जब एक चित्र सूख रहा होता, तब दूसरा बनाने बैठ जाता। योगियों ने तन्मयता की की बड़ी महिमा गायी है। अनुभूत क्या है, यह अब जाना। एक महीने मे ही लगभग ३२ पेंटिग्स तैयार हो गयीं। चित्र तो आँखों में तैरते ही थे। उनकी तादाद और वजन देखकर मेरी छाती फूल उठती।

नीला कहा करती, 'राम तुम्हारे इन चित्रों की प्रदर्शनी जब होगी तो देखना, धूम मच जायगी। सारे अखबार वाले तुम्हारा फोटो छापेंगे। तुम्हारी पेंटिग्स बिक गयी तो नौकरी की समस्या नहीं रहेगी। हम दोनों सारा हिन्दुस्तान घूमेंगे। इसी आसमान के नीचे कितना कुछ सुन्दर नहीं है, और हमने अभी तक कितना कम देखा है?'

मै कल्पना-विभोर हो कर सोचता, संसार के रमणीय से रमणीय स्थानों पर नीला मेरे साथ होगी।

चित्र तैयार हो गये। नीला ने सबको कार्ड-बोर्ड्स पर चिपकाया। फ्रेमिंग की।

प्रदर्शनी का आयोजन हो गया। नीला और मैं दोनों बैठे डेकोरेशन-सजावट-के बारे मे सोच रहे थे। नीला ने अपने उसी कार्टून को, जो उसने अन्नपूर्णा को दिया था, इनलार्ज करके, बड़ा करके प्रदर्शनी के दरवाजे के सामने रखने का प्रस्ताव रखा। कहने लगी 'प्रवेश करते समय लोग हँसते हुए, प्रसन्नता के साथ आयेंगे।'

९ जुलाई से १६ ता० तक प्रदर्शनी रही। बहुत कुछ खर्च हुआ होगा। उसका हिसाब मेरे पास नहीं। नीला ही जाने। दाखिल होने की दो आने फीस थी। टिकिट खूब बिके। सोचता हूं, अन्नपूर्णा-माँ के सारे पैसे वसूल हो गये होंगे।

प्रदर्शनी में स्वयं उपस्थित था। नीला भी थी। उसकी दो सहेलियां आ गयीं। 'भवन' के दो उदार-हृदय कर्मचारी स्वयंसेवक तैनात हो गये। नीला अभ्यागतों का स्वागत कर रही थी। उनके साथ जाकर रेखाओं को स्पष्ट करती हुई, रंगों और रूपाकारों का शब्दों में बयान दे रही थी।

यह सब अच्छा ही तो लग रहा था। एक ओर खड़ा अपनी जीवित कीर्ति को देख रहा था। दो एक मिनिस्टर आये। कुछ विदेशी भी। सरकारी और गैर-सरकारी बड़े आदमियों से लगाकर स्कूल और कालेज के लड़के-लड़कियों की भीड़ कम नहीं थी। आर्टस्-स्कूल के तो प्राय सारे विद्यार्थी सरकार-साहब के साथ आ गये थे।

सरकार साहब ने नीला से पूछा, 'राम कहां है?' नीला मुझे पकड़ ले गयी। कुछ संकोच महसूस कर रहा था। जैसे कोई क्वांरी कन्या सम्पूर्ण शृंगार के साथ पुरुषों की भीड़ में खड़ी हो गयी हो।

सरकार साहब ने गद्‌गद् स्वर में कहा, 'राम, मुझे गर्व है—मैं तुम्हारा टीचर हूं।'

मैं विनीत होकर झुक गया।

'कम!' उन्होंने कहा। मैं उनके साथ साथ चलने लगा। 'चरणरज' चित्र के सम्मुख खड़े होकर बोले 'मैंने इसकी सारी कहानी सुनी है, राम'

उस दिन की याद आयी। चुप रहा।

उनके साथ ही एक लड़की थी। कुछ अधिक उत्सुकता के साथ आगे चली आयी। देखा, यह वही है, जिसे मैंने अपने 'अर्द्ध-नारीश्वर' चित्र में स्त्रीत्व के रूप में लिया था। उस चित्र को देख कर एकबारगी वह ठगी-सी रह गयी।

मैं भी एक क्षण के लिए अपनी ही कृति के सामने रुक गया। जिसने एक दिन मुझे अनजाने में विश्वासपूर्वक किसी को देने के लिए पर्स सौंप दिया था। यह वही है!

कहने लगी, 'अर्द्धनारीश्वर एलिफॅंटा-केव्ज की मूर्ति की यदि अनुकृति है, तो सही नहीं है।'

—अनुकृति तो नहीं। प्रेरणा अवश्य उसी से मिली है। लेकिन समझ यह नहीं पाया, कि स्त्री अपने को स्त्री समझने के बाद, और पुरुष के अपने पुरुषत्व के प्रबोधन के बाद वह अर्द्ध-मिश्रित कैसे हो सकता है? यह तो शिशु-अवस्था में संभव है। इसीलिए यह अर्द्धनारीश्वर शिशु-रूप ही है। इसमें स्त्री की खोज गलत है, और पुरुष की भी। यह इन दोनों सीमाओं से परे है। तभी तो इसे बनाते समय मैंने ख्याल रखा कि स्त्री और पुरुष के अलग अस्तित्व को कहीं मिला न दूं, बल्कि दोनों का जो मौलिक है, उसे ही रहने दूं। रख सका हूं, या नहीं, यह नहीं जानता।

–नहीं रख सके। इसलिए कि मोडेल का इस्तेमाल किया गया है।

–इस्तेमाल तो नहीं किया। लेकिन अचेतन रूप से यदि ऐसा हो गया है, और जो पेश करना चाहता था नहीं कर सका हूं, तो मानूगा कि यहीं तक पहुच सका हू। इससे आगे बढ़ना अभी तक बाकी है।

उसकी ओर गौर से देखकर हस कर पूछा, 'आपको ऐसा लगा है कि आपका चेहरा इसमें आ गया है ? क्यों ?'

उसने सिर हिला कर स्वीकार किया।

–तो अपनी भावनाओं के अनुकूल तुम्हारा चेहरा ही मेरे मन-मस्तिष्क मे रहा होगा। इस दिन की घटना याद है ?

–अब याद आ रही है।

–सरकार साहब आगे चले गये हैं। जाइये, और जो कुछ भी है उसे देख आइये।

–जाने दीजिए। आपके साथ देखूगी।

मेरा मन लज्जित होकर लाल हो आया। मन ही मन कहना चाहा, 'नहीं, नहीं।' लेकिन प्रत्यक्ष में कुछ नहीं बोला। जैसे स्वीकार कर लिया हो। कहा, आइये।

वह मेरे साथ चलने लगी। पेंटिंग्स पर उसकी निगाहें नहीं थमी। कहने लगी, आपका नाम बहुत सक्षिप्त है।

–हां। है तो।

–यह तो अच्छा नहीं लगता। याद रखना भी मुश्किल है। थोड़ा विस्तार कर डालिये।

–धन्यवाद।

–आपकी उम्र क्या होगी ?

–जी ?

–यही, उम्र ?

–ठीक से याद नहीं।

–फिर भी !

–समझ लीजिये अठारह के लगभग।

–जन्म-तिथि याद है।

–नहीं।

चुप हो गयी।

मौन टूटा। पूछा, 'आपने कितने दिनों मे यह तैयारी की होगी ?'

–करीव एक महीना समझिये।

–एक महीने में ! उसने आश्चर्य व्यक्त किया। 'रिअली !'

–इतने थोड़े समय में एक साथ इतनी विभिन्न चीजें कैसे वन सकती हैं ?

–कैसे वनीं, यह तो नहीं जानता। खास कर इतने थोड़े अर्से में, कैसे जवाब दूं ? फिर भी वन तो गयी ही है। आपने तो काफी इम्तिहान ले लिया। मैं तो खैर प्रदर्शन के लिए रखा ही गया हूं, इसलिए सवाल पूछे ही जाने चाहिए, कुछ आपसे भी पूछूं ?

–कहिये ?

–सचमुच आप वहुत सुन्दर हैं। मोडेल का हिमायती मैं नहीं। लेकिन यदि कुछ समय दे सकें, तो ऐसा सौन्दर्य किसी भी कलाकार के लिए संग्रहणीय ही होगा। सौभाग्य से ही, प्रभु का इतना वडा कृतित्व दर्शन के लिए सुलभ हो सकता है।

मुक्त हंसी के मध्य उसने कहा, 'ओहो, तो यहा की सारी भीड भी वड़ी सौभाग्यशाली होगी।'

–सो तो नहीं जानता। लेकिन होनी तो चाहिए।

–चाहिए, अर्थात है नहीं। चाहिए !

–कहा न मैंने, सौभाग्य अतीत का परिणाम नहीं। वर्तमान की आकाक्षा का उत्तर है। यहा इसके लिए यदि मैं अकेला ही हू, तो भी गलत नहीं होऊगा।

–तो कलाकार साहव, आप मेरा स्केच वनायगे ? और यहीं कहीं, किसी के सौभाग्य का उत्तर देने के लिए टाग देंगे, क्यों ? मुझे ही फिर यहा क्यों न कहीं खडी कर दें ? जीवित-कला की विरोधी नहीं हू। लेकिन कला वह भी है, जिसमें से जीवन निकलता है। जीवन मे कला की जो खोज है, वह पेशा हो सकता है, कमर्शियल-आर्ट हो सकता है, फाइन-आर्ट नहीं। किसी के प्रकृतिदत्त सौन्दर्य की प्रशस्ति गाने में कलाकार की विशेषता ही क्या ? वल्कि इस मीडियम को अधिक महत्व देना- जो लाचार हैं, उनकी हसी उडाना ही तो है।

इतने लम्बे लेक्चर, और दुरुह दार्शनिक भाषा को समझने का प्रयत्न करता रहा। हीनता का दौरा फिर सवार हो गया। सोचा, कितना कुछ

जानने को है, और कितना कम जानता हू । कला क्या है ? इस बारे में मनीषियों ने क्या कहा है, इस बारे में तो बिलकुल कोरा ही हू ।

मुझे खामोश कराने में उसे बड़ा संतोष हुआ होगा । कहा, आइये आपने जो किया है, उसे तो देख ही लें ।

चित्रों की महत्ता समाप्त हो गयी । नीरस और उत्साह-रहित भाषा में हिसाब देने बैठा

—यह चित्र है, गाड़िया लुहारों का । राजस्थान के प्रतापी राणा के साथ इनके वंशजों ने प्रतिज्ञा की, कि वे थाली में खाना नहीं खायेंगे, बिछौने पर सोयगे नहीं, कहीं स्थिरता के साथ डेरा नहीं डालेंगे । प्रताप को राज्य मिला । अमरसिंह के दरबार में वेश्याए नाचीं, मौजें उड़ी, गुलछर्रे उड़े, भामाशाह की धन की थैलियां मुक्त थीं । लेकिन ये अभागे गाड़िया-लुहार आज भी ** अपनी प्रतिज्ञा में बंधे हुए, इधर-उधर भटकते फिरते हैं। ऐसे अभिशप्त जीवन

उसने टोका, अज्ञान की वेदी पर जिन्होंने आत्म-हत्याएं की हैं उनके प्रति इस चित्र द्वारा किस की सहानुभूति हो सकेगी ?

कट सा गया । आगे बढा । गला साफ करके अपने दूसरे चित्र की व्याख्या की —

–यह है ताजमहल । जिसकी सुन्दरता जगत–विख्यात है । लोग कहते हैं, शाहजहां ने इसे बनवाकर, अपने प्रेम को अमर कर दिया । लेकिन उन हजारों औरतों के सुहाग की कब्र भी यहीं है, जहां पर मजदूरों के प्राण कीड़े मकोड़ों की तरह इस विशाल गुम्बज पर चढते समय गिर कर यमुना में विसर्जित हो गये, और जिनके लिए किसी ने एक आंसू तक नहीं बहाया ।

–इसलिए इसे प्रेम–स्मारक न कहा जाय ?

–कहने वालों को रोका नहीं जा सकता । लेकिन यह प्रेम कितना भयानक था, कहना यह है ।

'हुम् ।' इस हुंकारकी ध्वनी के आगे पराजित हो गया ।

–यह है, युग–चिन्तक ! जिसके चारों ओर उज्ज्वल प्रकाश फैला हुआ है, पर वह अपनी छाया, अन्धकार के घेरे के अतिरिक्त कहीं कुछ देख नहीं पाता ।

** अब प्रधान-मंत्री श्री नेहरू द्वारा उन्हें प्रतिज्ञा मुक्त कर दिया गया है।

'और यह है चरण-रज !' कहकर जैसे उसने मेरी तमाम प्रभावशाली बातों को उतार कर फेंक दिया।

इसलिए इसी तरह के जो और चित्र थे, उन्हें बताने की, उनकी व्याख्या करने की रुचि नहीं रही।

तभी एक भारी भरकम, मोटेताजे रोबीले से विदेशी सज्जन ने आकर पूछा, 'आप ही का नाम मि० राम है ?'

मैंने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया।

–मैं आपकी 'ताजमहल' वाली पेंटिंग खरीद रहा हूं। बहुत पसन्द आयी। यह है चैक। प्रदर्शनी खत्म होने पर मेरा आदमी आकर ले जायगा। कहकर उन्होंने चैक मेरी ओर बढा दिया।

तभी वह बीच में पड़ी ! कहने लगी, 'यह मैं खरीद चुकी हूं।'

खरीद-बिक्री की बात भूल कर पूछ बैठा, 'लेकिन यह तो आपको पसन्द नहीं आयी थी ?

—पसन्द आने लायक वह है भी नहीं। खरीद तो इसलिए रही हूं, कि ऐसी चीजें हिन्दुस्तान के बाहर जाकर यहां का अच्छा-खासा मजाक उड़ाती हैं। इसलिए यदि राष्ट्र के गौरव के लिए मैं कुछ खर्च करती हूं, तो आपके द्वारा इसे बेचे जाने का प्रायश्चित हो जायगा।

उन साहब ने ध्यान से इस लड़की की बात सुनी। मुझे ख्याल आया–कोई अस्पष्ट चीज रह गयी है। उन्होंने चैक वापस नहीं लिया, कहा, 'कोई बात नहीं, 'चरण-रज' पेंटिंग के लिए ही सही। लीजिये।'

मैंने धन्यवाद सहित चैक ले लिया।

लेकिन इस अपरिचित लड़की द्वारा किये गये अपमान को भूल नहीं सका। पूछा, 'जो सत्य है, उसे पैसे के बल पर कब तक छिपाये रखेंगी ?'

–पता नहीं यह सत्य है, या वह; कि आज तक ताजमहल के लिए लोगों की श्रद्धा-भावना जमी हुई है। इसका मूल क्या था, कौन जानता है, प्रस्तुत जो है वह बुरा नहीं है, यह मैं जानती हू। यदि ताजमहल जैसी इमारत को महल अथवा किले कोर्ट की जगह प्रेम-स्मृति-चिह्न मान लिया जाय, तो कौनसी बुराई होगी !

जो बहुत अधिक सेंसेटिव [नाज़ुक] है, इस पीड़ा को वे ही समझ सकते हैं। दुखी होकर बोला, 'आप जाइये। जैसा भी हूं, ठीक हूं। आपसे मिल कर दुख ही हुआ।'

प्रत्युत्तर में उसने अपनी चैक-बुक निकाल कर चैक दे दिया। कहा, यह उस चित्र की कीमत है।

विना मेरी ओर देखे, वह चली गयी।

गुस्सा था, सो सोच रहा था, अच्छा हुआ। पिंड छूटा।

एक लड़का और प्रदर्शनी में मिला। वह कुछ 'नख-चित्र' ले आया था। मुझे कहा, देख लीजिये, और लिख दीजिये, 'अच्छे हैं।' मैंने लिख दिया।

मालूम हुआ उसका नाम है, मृणाल माझरेकर। यदि वह नहीं आयी होती, तो उस प्रदर्शनी को अपनी वहुत वड़ी सफलता समझता।

लेकिन वास्तव में यदि मृणाल जीवन में ही न आयी होती तो?

आठ :

प्रदर्शनी में जो कुछ खर्च हुआ, उसके वावजूद लगभग पांच सौ रुपये वच गये थे। तीन चित्रों की विक्री से आशातीत पैसे मिले। टिकटों की आमदनी से प्रारंभिक खर्च निकल गया होगा। हिसाव-किताव नीला ने ही किया। मुझ से यह हो नहीं सकता। हो सकता हो, तो भी करना नहीं चाहता। 'आई केन, वट आई विल नॉट' वाली वात समझिये।

मां-अन्नपूर्णा का प्रोत्साहन एवं कृपा नहीं होती, तो प्रदर्शनी ऐसी न होती। वे मुझे प्यार करती थीं, और तहे-दिल से करती थीं। हालांकि 'यदि यह चेहरा आपके मृतक-पुत्र से न मिलता, तो भी प्यार करतीं?' ऐसा सवाल पूछ कर मैंने उन्हें कड़ी चोट पहुचा दी थी। प्रश्न जितना कटु था, उत्तर उतना ही सुखद रहा।

नीला ने प्रदर्शनी के समाप्त होने पर ठाकुरजी को प्रसाद चढ़ाया। मैंने पूछा'—इसकी क्या जरूरत थी नीला?

—प्रभु की कृपा थी, तभी तो ऐसी कामयावी मिली। यह श्रद्धांजलि है। इसकी आलोचना नहीं की जाती।

कुछ रुक कर कहने लगी, 'राम इतिहास के प्रति जब विरक्ति होती है, तब इस अज्ञात और अज्ञेय भावना के करीब जाकर मन को बड़ी शांति मिलती है। ऐसा नहीं होता, तो धर्म और देवताओं के विभिन्न रूप सारे संसार में क्यों मौजूद होते ? भगवान चाहे हो, चाहे न हो, लेकिन उस अव्यक्त के प्रति जो व्यक्त श्रद्धा है, उसमें कोई ऐसी मौलिक चीज है, जिसके कारण वह इतनी विशालता और दीर्घता प्राप्त कर सकी है। कोई चीज लम्बे अर्से से चली आ रही है, सिर्फ इसीलिए उसे सही नहीं कह रही हूं, बल्कि कह रही हूं यह, कि वह आज भी मुक्तिबोधक है। इसलिए तर्कातीत है।'

भगवान को लेकर झगड़े-झमेले में कभी पड़ा नहीं। मौका ही नहीं मिला। अनाथालय में जिस भगवान के प्रति प्रार्थना करवायी जाती थी, उसका अर्थ उस समय नहीं समझता था, आज भी नहीं जानता। शायद इसीलिए भगवान के किसी अतुलनीय और सुन्दर स्वरूप का साक्षात्कार कभी हो नहीं सका। लेकिन जब कभी अन्तर को टटोलता हूं, तो पाता हूं कि बंधी हुई परम्पराओं से विपरीत सोचने पर भी आदर्शों के लिए पीछे ही मुड़ कर देखना पड़ता है। इसलिए इस परम्परा के मौलिक स्वरूप के बारे में खुल कर आज तक अनास्था प्रकट नहीं कर सका। यही मान कर चुप हो जाता हूं कि स्वल्प बुद्धि में सब कुछ समा जाय, यह अभी सम्भव नहीं है।

जो हो प्रसाद मैंने प्रेम-पूर्वक ग्रहण किया। भगवान के प्रति सम्मान ही प्रदर्शित किया। शायद इसलिए कि नीला की सिफारिश थी।

मैंने कहा—नीला, प्रदर्शनी सफल ही रही। लेकिन सोचता हूं अभी तक बहुत कुछ शेष है, जो जानना है। वहां एक लड़की आयी थी। प्रथम परिचय में ही वह इतनी कट्टर आलोचक बन गयी, कि देख कर डर लगे। आखिर हाथ जोड़कर कहा, 'जाइये।' तब गयी।

–जानती हूं। मांझरेकर की बात कह रहे हो न ? तुम से चाहे लड़-झगड़ आयी हो। लेकिन मुझे तो कह रही थी कि तुम्हारी मौलिकता अद्वितीय है। तुम्हारा जन्म-दिन पूछ रही थी। कहती थी, उस दिन कुछ उपहार दूंगी।

मैंने उतावला के साथ पूछा, 'और तुमने क्या कहा ?'

–मैंने जन्म-तिथि बता दी।

–तुम्हें क्या मालूम ?

–नहीं तो तुम्हें मालूम होगी ?

—एक दिन चाहता था।

—अब नहीं ?

—नहीं।

—मैं तो आज भी वैसी ही हूं। खैर, आज मैं आपका चित्र बनाना चाहती हूं।

—चाहा कीजिये। मैं क्या करूं ?

—आप मोडेल बन सकते हैं क्या, यह पूछ रही हूं।

बात उसने बदल दी थी, मैं बिलकुल शिशु नहीं, कि न समझ सकूं। किसी भी तरह बहला कर अपमान करने में इसे बड़ा मजा आता है, यह जानता था। इसलिए जवाब नहीं दिया।

फिर पूछा, आप मोडेल बन सकते हैं ?

मुंह से निकल गया, तो क्या होगा ?

—उससे आपको मतलब ? आप यदि मोडेल का काम दें, तो मैं फीस दे दूंगी।

यह थोले सूरज की तरह साफ है, कि वह रईस है और मैं नहीं हूं। फिर भी इसे ऐसा आधार नहीं माना जा सकता, कि कोई किसी का व्यर्थ अपमान करे। गुस्से में ही कहा, 'फीस आप दे सकेंगी ?'

—विश्वास न हो, तो तय कर लीजिये।

—पैसे का गरूर छोटा होता है मृणाल। वह बहुत थोड़ा दे सकता है।

—देखिए भाव–ताव करने हों, तो फालतू की फिलासफी मत झाड़िये। कहिए, क्या लेंगे ?

—आप देंगी ?

—दूंगी।

—जाने दीजिये, शायद नहीं दे सकेंगी।

—कहिये तो।

—कह तो रहा हूं, आपके बस की बात नहीं। मैं बड़ा महंगा मोडेल हूं।

—महंगाई देख कर ही शायद किसी रईस का मन चल जाय।

—दे सकेंगी ?

—दूंगी।

—अच्छा। बताइये, कितना समय लगेगा ?

—यहां करीब दो घंटे।

—दो के बजाय, तीन घंटे आप कहेंगी, वैसा खड़ा रहूंगा। बाद में फ़ीस

—ना, पहले ही तय कर लीजिये।

—आपको खूब पीटूंगा। जितना पीट सका।

ऐसे उत्तर की अपेक्षा नहीं थी। विरक्ति और लज्जा के मारे वह आरक्त हो गयी। मेरी ओर ठीक उसी तरह देखती रही, जैसे किसी कसाई की ओर वैष्णव देखता है। बोली, अच्छी बात है। वचन दिया है, मंजूर है! चार बजे फाटक पर मिलिये। घर पहुंचाने के लिए प्रबन्ध हो जायगा।

जहां चरम सीमा हो सकती है, वहां से यह बात प्रारंभ कर रही है। इसलिए सिमट गया।

वह झमक कर चली गयी।

जी किया, कि भाग जाऊं। कहीं सचमुच ऐसा होता है, क्या? अभी तक सिविलाइज्ड-मेनर्स [सभ्य आचरण] तक मुझमें नहीं। लेकिन जानता था कि अभी तक बहुत कुछ होना बाकी है, इसलिए जड़ बना बैठा रहा। भूल गया कि नीला इन जिल्दों के लिए मेरा इन्तजार कर रही होगी।

अनजाने में ही रिपोर्ट में प्रकाशित पेंटिंग्स देखने लगा। सोच रहा था, इनमें अंकित स्त्रियों में कहीं यह मृणाल भी है या नहीं? कौनसा ऐसा कोश है जहां ढूंढकर देख सकूं कि आखिर वह चाहती क्या है, वह स्वयं है किस धातु की?

ठीक समय पर वह आयी।

चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं। कहा, चलिये।

'नहीं', नहीं कह सका।

दरवाजे पर चमचमाती कार खड़ी थी। दरवाजा खोल कर बोली, 'बैठिए', बैठ गया। पास आकर उसने दरवाजा बंद कर दिया। कार रवाना हो गयी।

घर आलीशान, साफ-सुथरा, ऐश्वर्य-सम्पन्न।

उस समय अपरिचित-सा था; इसलिए सिकुड़ा-सिमटा निराधार बैठा रहा। अब उसके बारे में जानता हूं, इसलिए संक्षिप्त परिचय दे दूं। स्वर्गीय

पिता डाक्टर थे। माँ ने विलायत में ऊंची शिक्षा पायी। एक बहन थी। एम० ए० में फेल होने पर नृत्य सीखने लगी थी। बड़ा भाई स्थानीय अंग्रेजी के एक अखबार में न्यूज-एडिटर था। सारी पारिवारिक धाराएं, विभिन्न। बिलकुल स्वतंत्र। माँ का लाड़-भरा अनुशासन, और उसके अतिरिक्त पूरी आजादी।

माझरेकर का पूरा नाम है मृणाल जे० माझरेकर। एग्रीकल्चर लेकर बी० एस० सी० की। मन वहां से विरक्त हुआ तो आर्ट्स स्कूल ज्योइन कर ली। उम्र बीस के लगभग होगी। किसी भद्र महिला से ऐसा सवाल पूछा नहीं जाता। इसलिए इस बारे में ठीक से नहीं जानता। लेकिन अंदाज गलत नहीं होगा। उम्र में बड़ी होने पर भी कद की ठिगनी होने के कारण मुझसे छोटी ही दिखती थी।

उसके साथ उसके निजी कमरे में गया। चारों ओर नाना प्रकार की छितरी हुई सामग्री। सफाई के नाम पर पलंग और टेबल का कपड़ा मात्र। इधर-उधर अखबार, पुस्तकें, रंग के डिब्बे, ब्रशें। स्टैंडिंग बोर्ड, और इसी तरह का अल्लम-गल्लम। सामान इतना अधिक था कि उस विशाल कमरे को भी उसके लिए कम ही कहा जा सकता है। चारों ओर खिड़कियां, कि खोल दी जाय, तो हवा और प्रकाश से सारा कमरा भर जाय।

अन्दर पहुंचते ही नौकर को बुला कर सारे बिखरे हुए सामान को समेट कर पलंग के नीचे डाल देने को कहा।

मेरे बैठने की चिन्ता उसने नहीं की।

जिस अजीब परिस्थिति में प्रस्तुत था, उसमें सांस नहीं ले पा रहा था। सोच रहा था, सचमुच ऐसी भी कोई फीस होती है कि मैं उसे पीटूं? जो यह अभी सामने से घूम कर कहे, पीटो! तो?

स्टैंडिंग-बोर्ड [इजल] पर कागज लगाकर, क्लिप से जमाकर चारकोल उसने हाथ में ले लिया। मेरे पास आयी। कहा, ठीक सामने खड़े होकर दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर तन कर, सीधे खड़े हो जाओ। हिलना मत।

आदेशानुसार निश्चल खड़ा हो गया।

वातावरण के रूखेपन को कम करने के लिए हंस कर कहा, 'तुम तो जीवन में कला को उस दिन व्यर्थ बता रही थीं। कला में जो जीवन ढूंढ लेते हैं, उन्हें भी मोडेल की जरूरत होती है?

–यह मत समझना कि जो बनाना चाहती थी, वह तुम्हारे बिना, बना ही नहीं पाती। वह तो बनता ही। लेकिन तुम्हें यहां इसलिए खड़ा रख रही हूं कि बता दूं कि जीवन में कला किस प्रकार प्रवाहित हो सकती है।

–इस प्रकार !

–हां ऐसे भी। स्थूल रूप में जो सुन्दर दिखायी देता है, उसमें मन की सूक्ष्मता नहीं घोली जा सकती, ऐसा मत समझना।

–नहीं समझूंगा।

–कोई क्या है, कैसा है, इसका हिसाब लगाना सहज नहीं, और जरूरी भी नहीं। लेकिन फिर भी उसे प्राप्त करने का, चाहे वह देखने के विलास के लिए ही क्यों न हो, प्रलोभन किसी को हो, तो निष्कर्ष का अर्थ, दर्शक की दृष्टि पर ही आधारित होगा। उस दिन यही कह रही थी, जीवन स्थिर और जड़ है नहीं। इसलिए सत्य के स्वरूप भी ऐसे नहीं। जीवन में जो है, वह सत्य हो सकता है। लेकिन कला प्रस्तुत–सत्य की ही प्रतिच्छाया नहीं। वह एकपक्षीय, अपरिवर्तनशील और चिरंतन है। चिन्तन से प्रस्तुत व्याख्याएं सत्य को बदल देती हैं। लेकिन जो चिरंतन है, वह अप्रभावित ही रहता है।

–तुम्हारी बातें समझने की योग्यता मुझमें नहीं। सीधी–सी बात जानता हूं कि जो बना सकता हूं, जो बन जाता है, वही बनाता हूं। क्यों बनाता हूं, और क्या बनाना चाहिए, यह नहीं जानता।

–यही तो बात है, इसीलिए तो हमारी कला जीवन को हिला देने वाली, झकझोर देने वाली नहीं हो पाती।

यह सोच कर चुप हो गया कि मोडर्न-आर्टिस्टों को कुछ भी बनाने के पहले और बाद में काफी कुछ समझाना होता है। मेरे सामने की ही बात है, एक आधुनिक कलाकार महोदय से एक मुंहफट पत्रकार ने पूछ लिया, 'इस शैली में क्या आप अपनी प्रेयसि का चित्र भी बना सकते हैं !' इस पर चित्रकार महोदय का मुंह लाल हो आया था। ठीक उसी तरह, जाने किस प्रकार के सिद्धान्तों को पढ़ने, जानने–समझने के बाद, इस भली लड़की ने जो निष्कर्ष निकाले हैं: मुझे उस पर तरस ही आया। सो अधिक बहस नहीं की। बल्कि यों कहूं, कि प्रस्तुत हो गया कि जो कुछ वह बनायेगी, वही चिरतन सत्य होगा। उसी में जीवन का समस्त शौर्य और प्रभुता होगी।

कहा, आपके आगे दम करने लायक नहीं हू। इसलिए बहस करने में असमर्थ हू। मैं मोडेल हू। मेरा जो काम है, वह ले लो। छुट्टी दो।

-काम तो पूरा होने दो। फिर पूरी फीस देकर विदा दूगी। देखती हू, कि तुम अपनी फीस वसूल कर सकते हो या नहीं।

-तुम बताओ, तुम्हें क्या लगता है? मुझसे पूछो, तो कहूं कि यह तो यों ही गुस्से में मुह से निकल गया था। लेकिन 'नहीं' कहने के लिए तुम्हें बहुत लम्बी भूमिका बांधनी पड़ी। कितना परिश्रम करना पड़ा!

वह चुप हो गयी। चारकोल की सरसराहट सुनायी दे रही थी। वह अपने काम में लगी हुई थी। मैं ऊपर आकाश की ओर हाथ पसारे अकारथ ही खड़ा हू, यह देखकर अपने पर दया आयी। लेकिन अभी-अभी जो बातचीत हुई थी, उससे कुछ हल्का हो गया। बड़ी विनोदी स्थिति लगी। मैं बोर्ड की ओर पीठ किये खड़ा था। मृणाल झाक कर कभी-कभी मेरी ओर देख लेती। मुझे अविचलित देख, उसे सतोष होता। ललाट पर झूम आती लटों को कुहनियों से हटाकर वह फिर तल्लीन हो जाती।

मैं खड़ा सोच रहा था, मन के भी कैसे अजीब फितूर हैं, इन रईसों के। आखिर साबित कर ही छोड़ा कि मुझे उपदेश देने में वह समर्थ-केपेबल-है! मुझे रास्ता बताने की घनघोर जिम्मेवारी लेने को तैयार! बीच-बीच में वह चुप हो जाती, और मैं जब उसकी मुसकान को देखता रह जाता, तो चिढ-सी जाती, और दूने वेग से आंखों ही आखों में कुरेद कर कहने की कोशिश करती, 'मैं बडी हू, तुम अकिंचन हो।' प्रत्युत्तर में सिर झुका कर मान लेता, तो उसे रज होता। बात काटू तो ईर्ष्या। मेरे बारे में ख्वामख्वाह सोचती है, सो कहू, प्रेम है। नाना प्रकार से नचाने का प्रयत्न करती है, इसलिए कह सकता हू, घमड है, तिरस्कार है। उदारता देखता हू, तो सोचता हू, यह सरक्षण है। अस्तु। जो भी हो, यह सब अप्रिय नहीं है, लुभावना है। सुहावना है।

दो कदमों के फासले पर मेरे सामने आकर पूछा, नाराज हो?

बरबस हंसी आ गयी। पूछा, क्यों?

-तो इस तरह मुह फुलाये क्यों बैठे हो? डिस्टर्ब्ड होती हूं।

-अच्छा। हसने की कोशिश करूगा। लेकिन सूरत है ही ऐसी, क्या करूं?

–मजाक मत करो।

–ठीक, नहीं करूंगा।

–अच्छा बताओ, सौन्दर्य अपने आप में ही सब कुछ होता है, या इसके अतिरिक्त ओब्जेक्टिवली भी उसमें कुछ और चीज होती है? सब्जेक्टिव टोन मे जवाब मत देना।

–सुन्दर नहीं हूं। सुन्दरता के बारे में अधिक नहीं जानता। जवाब नहीं दे सकूंगा।

–क्यों नहीं दे सकोगे?

–इसलिए, कि खुद तो दुखी हूं ही। तुम्हें नाराज करने की इच्छा नहीं।

–तुम क्यों दुखी हो? क्या कष्ट है?

–इसलिए कि तुम इस गरीब की एक बात भी सुनने को तैयार नहीं।

–क्या नहीं सुनी?

–यही, कि यदि कहूं कि तुम सिर्फ सुन्दर हो, तो बहस करने लगोगी।

–बस, सिर्फ सुन्दर ही। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं?

–नहीं।

–कुछ भी नहीं?

–नहीं; मुझे तो नहीं लगता।

क्षण भर विराम लेकर बड़े भोलेपन से उसने कहा, तो तुम्हारी ही बात सही होगी?

–मान लो तो खामोश हो जाओगी। बहस नहीं करोगी।

जैसे पराभूत हो गयी हो। बोर्ड के पास आकर, फिर अपने काम में मग्न हो गयी।

लगभग घंटे भर उसी पोज में खड़ा रहा। कभी अपने को देखता, कभी अपने द्रष्टा को, कभी उस रचना को, जिसका निर्माण करते हुए उसके ललाट पर पसीना छलका जा रहा है।

" . . जय हे, जय हे, जय जय जय हे, भारत भाग्य-विधाता"

राग मधुर था। समय और स्थिति राष्ट्र-गीत की इन पंक्तियों के अनुकूल थी या नहीं, यह ठीक से नहीं कह सकता।

बस, केवल इसी पंक्ति को वह बारम्बार दुहराती रही। कंठ उसका अत्यन्त सरल, उच्च और मधुर था। खड़े रहने की थकान दूर हो गयी।

गुनगुनाना समाप्त हुआ। चित्र बन गया। हाथ नीचे कर लेने चाहे, सो इजाजत नहीं मिली। कहने लगी, काम खत्म नहीं हुआ, बिना हिले वैसे ही खड़े रहो। फिर अटेन्शन में खड़ा हो गया। पूछा, चित्र देख सकूंगा?

इशारे में ही उत्तर मिल गया 'नहीं।'

चारकोल रख कर रंगों का ट्रे लेकर खड़ी हो गयी। हे भगवान, यदि कलरिंग मोडेल को इसी तरह खड़ा रखकर ही हुई, तो मैं उर्ध्व-ऋषी हो जाऊंगा, जो सूर्य-उपासना के लिए हाथ ऊंचे किये तपस्या करते-करते अपनी टांगे खो बैठे थे।

सम्भवत: दया आ गयी। पूछा, थक गये? चाय पीयोगे?

प्रार्थना की, पीऊंगा। कृपा होगी।

नौकर को बुलाकर आदेश दिया। मैं अभागा खड़ा रहा।

कलर-प्लेट अन्ततोगत्वा उसने नीचे रख दी। अपना कृतित्व निहारती रही। धन्यवाद देकर अंग्रेजी में कहा, यू आर द परफेक्ट मोडेल फॉर मी! [तुम मेरे लिए सही मोडेल हो]

पूछा, काम खत्म हो गया?

–हो गया।

–देखना चाहता हूं।

–अभी नहीं। पहले चाय पी लो।

नौकर चाय लाया। पी।

मृणाल ने इजाजत दी कहा, आओ, देखो।

स्टेंडिंग-बोर्ड के सम्मुख खड़े होकर देखा।

सारे उपस्थित को भूल गया; अनुपस्थित, पर बद्धमूल संस्कार सजग होकर केन्द्रित हो गये। हीनता का भयकर रोग फिर आया।

भाव चित्र का शब्दों मे बयान देना गलत है। जो कुछ भी कहा जायगा, वह उसका आभास मात्र ही होगा। लेकिन चित्र कंट यही रहा था कि एक परम-पुरुष, जिसका उठा हुआ भाल, वृषभ स्कन्ध, चौड़ा सीना, तनी हुई भुजाएं, ऊपर से प्रकाश की अपरम्पार वर्षा, दोनों हाथों मे विश्व को थामे हुए।

–यही है, यह राम ! क्षुद्र, संक्षिप्त और छोटा सा राम ? मुंह से अचानक ही निकल गया, मृणाल, यह राम है ? यही तुम्हारा मोडेल है ! ऐसा नहीं है वह। इतना बडा नहीं, इतना विशाल नहीं।

–तुम्हारी व्याख्याओं को आजतक नहीं समझ सका। लेकिन तुम्हारे कृतित्व को समझ सकता हू। सशक्त है !

मैंने गंभीर स्वर में कहा, तुमसे बहुत कुछ सीखा मृणाल। कृतज्ञ हूं।

–और तुम्हारी फीस ?

–अब अधिक मत करो।

–नहीं। मैं सामने हूं। मोडेल बन कर खडे रहे हो। दुख उठाया है। फीस तो लेनी ही होगी ! कहती हूं, पीटो !

झुक कर घुटनों के बल बैठ गया। कहा, अपराध हुआ, दड दो।

बालों को बड़ी बर्बरता से पकड़ कर उसने मेरा सर ऊपर उठाया। पीछे की ओर धक्का देती हुई उसके हाथ की पाचों उंगलियां मेरे गाल पर उभर आयीं।

देखा, वह काप रही थी।

स्त्री चरित्र को समझना देवताओं के लिए चुनौती है। आदमी के लिए तो क्या कहा जाय ?

सब कुछ भूल गया। याद रहा, वह चित्र ! उस चित्र का राम, और उस उन्नत राम के सामने यह छोटासा राम माथा झुकाये बैठा रहा।

शत-शत कंठों के साथ मृणाल की निर्मलता मेरे मन-प्राण मे गूज रही थी। भाराक्रान्त सा, उस चित्र की स्मृति लिये घर आया।

मृणाल की एक-एक मुद्रा उसका प्रत्येक भाव, उसके अंगों की अनेकानेक हलचलें, उसकी सारी बातें, माथे में चक्कर काटती रहीं। तूफ़ान चला गया, तो भी लगा कि इसके बाद भी बहुत कुछ होने को शेष है।

लेकिन इस बहुत कुछ को उस दिन समझ नहीं सका था।

घर आकर अपने सारे चित्र फाड डाले। नीला मना करती रही। जबर्दस्ती हाथ पकड़ कर कहने लगी, यह क्या पागलपन कर रहो हो ?

–नीला यह सब निराशा है, अन्धेरा है। मुझे आशा चाहिए । प्रकाश चाहिए। विद्रोह ही नहीं, विश्वास भी। व्यवस्था भी।

जीवन के अनेकानेक ऐसे प्रसग हैं, जब कि मन करता है कि जी भर कर रोया जाय। लेकिन उसका वारम्बार उल्लेख करने में संकोच होता है। विग्रह और जिद के साथ उन्हें नष्ट करते हुए, मृणाल की सारी बातें कह सुनायीं सामकर उस चित्र की।

पूछा, राम, मृणाल तुझे कैसी लगी ?

गालों पर हाथ फेर कर कहा, यह देखो !

वह हस पड़ी। 'यही तो तुझे चाहिए था। तेरे जैसे आदमियों का इलाज ऐसे ही होता है। जगली-आदमी, दूसरे को भी अपने दर्जे का बनाये बिना नहीं रहता। मैं तो मृणाल से बहुत ही खुश हुई हू। सच !'

–तो तुम भी कसर मत छोड़ो। उस दिन तुम्हारे साथ भी तो जगलीपन कर चुका हू। उसके सामने तो सिर्फ बात ही की थी।

–उस दिन तो तुझे माफ कर दिया था। लेकिन वास्तव में बिना मार खाये तुम ठीक हो नहीं सकते। लोग कहते हैं, मारना-पीटना ठीक नहीं। ठीक तो नहीं, लेकिन फिर भी थोड़ी बहुत मार तो कुछ व्यक्तियों को पड़नी ही चाहिए। हा, किस पात्र को कितनी मिले, यह जरूर सोचने की बात है।

मैं मुह फुलाये बैठा रहा। नीला हसती रही । 'यह तो अच्छा हुआ कि मृणाल ने तुझे पीट दिया। नहीं तो तेरी बातचीत तो ऐसी थी, कि वह अगर कुछ न बोलती तो मैं तुझे आज बिना मारे नहीं रहती।

नीला के इस विनोद से अवसाद धुल गया । 'नीला' मैंने पूछा 'एक बात बताओ, हम अजीबोगरीब आर्टिस्टों का कोई बहुत बड़ा उपयोग होता है ? ऐसा कि हम भी राष्ट्र-नायक समझे जा सकें। हम भी अपने देश को, समाज को अपना कृतित्व दे सकें। ऐसा बड़ा उपयोग हो, जिससे एकाध को नहीं, लाखों करोड़ों को लाभ हो ? ऐसा उपयोग भी कोई है ?

–हो क्यों नहीं सकता, राम। अवश्य हो सकता है। लेकिन, ऐसी महात्वाकांक्षावाले को उसकी पूरी कीमत देनी होती है। उसकी भावुकता अमर, अखडित होनी चाहिए उफान की तरह चढ़ने-उतरने वाली नहीं। तभी वह अथक अभिव्यक्ति कर सकेगा। तभी उसके वक्तव्य को जन-मन आंक सकेगा।

–लेकिन नीला, इससे क्या होगा?

–इस अथक अभिव्यक्ति का परिणाम कुछ भी नहीं होगा, यह मत कहो। रोज विज्ञापन देखते हैं, तो विज्ञापित चीज का महत्व नजरों में बढ़ जाता है। कहते हैं, आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए सत्संग करो। बौद्धिक-विज्ञान जानने के लिए अध्ययन करो। मतलब इन सब का एक ही है कि दूसरों को देखो, जानो, समझो, और तब अपने को ढूंढो। यह तो मार्ग-निर्देशन ही है। लेकिन तुम्हारी कला तो चुम्बकमय है। वह खुद दूसरों को खींचेगी। भावनाओं की स्थिरता से जिस सत्य को तुम प्रकाशित करोगे, उसके लिए शिक्षा, समय, बुद्धि किसी की भी शर्त नहीं होगी। वह अधिक प्रभावशाली होगी! तुम्हारा प्रभाव उच्चकोटि का हुआ, तो उसका परिणाम लाखों करोड़ों के मन का तुम्हें अधिनायक बना देगा।

विज्ञापक को विज्ञापन करने में वस्तु की बिक्री से लाभ हो जाता है; पर तुम्हारे जागरण के चित्रों से ठीक वैसा स्थूल लाभ नहीं होगा, जैसा विज्ञापकों को हो जाता है। फिर भी जो प्राप्ति होगी वह घाटे की चीज होगी, सो बात भी नहीं। जो घाटा उठाना होगा, वही तो राष्ट्रीय जागरण के अग्रदूतों की सबसे बड़ी थाती है। यही नुकसान सहकर तूने अपना काम किया तो तेरी वह एकान्त रहने की प्रतिज्ञा सफल हो जायगी। तेरे मन का सारा अंधकार धुल जायगा। जाने-अनजाने तेरे करीब आ जायंगे।

–तो नीला, ये जो बड़े-बड़े उच्च कोटि के भाव-चित्र बनाये जाते हैं, वे सब अकारथ हैं, व्यर्थ हैं? इन सबकी कोई जरूरत नहीं? केवल बौद्धिक विलास ही हैं ये!

–ऐसा तो नहीं कहती। लेकिन इस से भी कोई बड़ी चीज जरूर है। सामाजिकता न रही तो वैयक्तिक बुद्धि की संक्षिप्तता में तुम्हारी महत्वाकांक्षा का पता भी नहीं चलेगा। लेकिन वैयक्तिक बुद्धि की सम्पत्ति पाये हुए समाज को कुछ देने के लिए पहले तुझे खुद को बहुत कुछ अर्जित कर लेना होगा। तभी तू उत्साह, जीवन और रोशनी के चित्र बना सकेगा। तभी सम्भव होगा, कि तू अपनी अभिव्यक्ति से तमाम लोगों का ध्यान अंधकार की ओर आकर्षित कर सके, मौत को बता सके, निराशा को नंगी कर सके। इसी से एक दिन वे लोग उठेंगे, जो समाज में क्रांति लाने का संकल्प लेंगे। सारा काम तू खुद ही कर लेगा,

ऐसा छल हो नहीं सकता। लेकिन उन युग-पुत्रों की नजरें अपनी ओर उठा सका, तो उनके हाथों के कृतित्व के लिए तुझे और मुझे भी कम गौरव थोड़े ही होगा ?

–तो नीला, मैं यही करूँगा !

–जानती हूँ कि तुम कर सकोगे, करोगे। लेकिन अभी नहीं। अभी तो तुमने जोश नहीं देखा, जिन्दगी नहीं देखी, प्रकाश नहीं जाना। अच्छा बुरा भी अभी तक नहीं जानते। जब यह जान जाओ, तब राष्ट्र को उपदेश देना। लोग तभी सुनेंगे, मानेंगे। तभी अपेक्षित लाभ होगा। नहीं तो रद्दी सामानों के बढ़िया और अधिक तादाद में प्रसारित विज्ञापन कुछ ही दिन लोगों की नजरों में स्थिर रह सकते हैं।

–तुमने भी नीला, 'नहीं' ही कह दिया। क्या करूँ, यह नहीं बताया।

–बताऊँगी भी नहीं। एक दिन तुम खुद सब जान जाओगे।

–कैसे, इसी तरह ?

–परिपक्वता किसी दूसरे की मीमांसा से नहीं आती, राम ! वह तो खुद की आत्म-जागृति पर ही निर्भर है। याद है गौतम को बुद्धत्व की प्राप्ति ? वह प्रशस्ति अथवा आलोचना से नहीं, निज के तत्वबोध से ही प्राप्त हुई थी। ऐसा ही होता है। उस दिन किसी के पास राह पूछने जाने की जरूरत नहीं होती।

–एक बात बताओ ! अन्नपूर्णा से प्रार्थना करूँ, तो वे मेरी नौकरी का प्रबन्ध कर देंगी। इसे तुम भी बुरा नहीं कहोगी। क्योंकि पैसों के बिना जीना असम्भव है। कुछ तो करना ही होगा। लेकिन जब नौकरी कर लूँगा, पैसे पाने लग जाऊँगा, तो तुम जिस महत्वाकांक्षा के स्वरूप का जिक्र कर रही थीं, वह कैसे पार लगेगी ?

–इस बारे में जो कह सकती हूँ—वह यही, कि नौकरी करना बुरा नहीं। क्योंकि पैसे के बिना चल नहीं सकता, इसे यदि सहज रूप से मजदूरी करके प्राप्त नहीं कर लोगे, तो एक दिन इसकी जरूरत की आवाज को सुनने का धीरज तुममें नहीं रहेगा ! तब ऊपर चढ़कर पतित होना बर्दाश्त नहीं हो सकेगा। उस दिन लुढ़कते हुए तुम कहाँ पहुँचोगे, इसका हिसाब नहीं लगाया जा सकेगा। राणा प्रताप की कहानी याद है ? वे अपनी बच्ची को नंगी और भूखी नहीं देख सके थे और सन्धि-पत्र लिखने के लिए तैयार हो गये थे ! वह परम-पुरुष

भी उस समय भूल गया, कि ठीक उसी लड़की की तरह मेवाड़ के हर सिपाही के बच्चे बिलख रहे हैं। ऐसा होता है, यह असंभव नहीं, स्वाभाविक है। लेकिन स्वाभाविक इसके अतिरिक्त भी हो सकता है। उसके लिए असाधारणता की किसी भी सीमा तक जाया जा सकता है।

–मुझे तो ऐसा लगता है नीला, कि पग-पग पर मुझे तुम्हारी जरूरत होगी। इससे अधिक नहीं हूं, इसे तुम भी मान लो। तुम जैसा बुद्धिमान होता, तो बहुत अच्छा होता। लेकिन हूं नहीं। उपाय नहीं।

–तुम अच्छे हो बने रहो। मरते वक्त तुम्हें अपनी बुद्धि का ठेका सौंप जाऊंगी।

रात अधिक गुजर चुकी थी। खाना खाने के बाद जब सोने लगा, सो कहने लगी, राम! आज तो तुम्हें नीचे ही सोना होगा।

'क्यों' यह नहीं पूछा। मैं ऊपर पलंग पर सोऊं, और वह फर्श पर, यह मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। लड़-झगड़ कर उससे जीत नहीं पाया। इसलिए यह देखकर भी कि वह मेरे लिए नीचे सोती है, मैं पलंग पर आराम से लेट जाया करता हूं।

पलंग का मुलायम गद्दा उसने नीचे बिछा दिया। खुद हमेशा की तरह केवल शतरंजी बिछा कर पलंग पर लेट गयी।

लैम्प बुझाकर सो गया। आदत ही ऐसी है। पड़ते ही नींद आ गयी। कुछ ही क्षणों के बाद वह मेरे सिरहाने आकर बैठ गयी। लैम्प जला दिया।

पूछा, सोने का विचार नहीं है?

–नहीं। नींद नहीं आ रही।

–लेट जाओ। जरा से नकली खर्राटे भरो। आ जायगी।

–कल पन्द्रह अगस्त है राम! हिन्दुस्तान आजाद हुआ था।

मैं उठ बैठा। हाथ पकड़ कर बोला, 'नीला, तुम्हें तत्त्व-बोध हो गया। बुद्ध हो गयीं। हिन्दुस्तान की बातें सोचने की बुद्धि अभी तक मुझ में नहीं आयी, लेकिन देख रहा हूं तुम्हारी चिन्ताएं कम नहीं। तथागत को नमस्कार, भन्ते, दीक्षा चाहता हूं! बुद्ध होने के लिए नहीं, सिर्फ चेला होने के लिए।

–आज एक कविता लिखी है, सुनोगे?

—मेरे मुतल्लिक हो, तुम्हारे से सम्बन्धित हो, तो सुन लूंगा। संसार से सम्बन्धित हो, अखिल भारतीय हो तो नींद लेने दो। दिन भर जो कुछ हुआ है, जो कुछ किया है, उससे थक गया हूं।

—इतना बुरा गाती हूं?

—गाती तो वह मृणाल भी अच्छा है। लेकिन देखो तो गालों की हालतः खैर, नींद नहीं लेने दोगी, तो कल आंखें भी लाल हो जायगी। कहने वाले हैं नहीं, नहीं तो कहें, बेचारा राम स्त्रियों के झमेले में अच्छा पड़ा। खूब मार खायी।

—मृणाल ने गीत भी गाया था?

—उसने तो सोलह कलाओं का प्रदर्शन किया था, नीला। नाचना, गाना, भाषण देना, चित्रकला, भाषाशास्त्र, गो कि कोई कला छूटी नहीं! और कला भी ऐसे ऊंचे दर्जे की, कि माथा दुखने लगे। छोटी बुद्धि पर अधिक वजन पड़ने पर ऐसा ही होता है!

—राम, मृणाल बहुत अच्छी है?

यह उसने कुछ ऐसे स्वर में पूछा कि गुस्सा हो आया। मैंने कसम खायी, 'नीला, अब यदि ऐसी कोई बात पूछी, तो उसका नाम भी जबान पर नहीं लाऊंगा।'

वह हंसती रही। कहने लगी, अभी तो उसकी कला की तारीफ कर रहे थे।

—तारीफ थी वह? भगवान ऐसी कीर्ति से बचाये!

—अच्छा सो जाओ।

—अब नींद कहां? गाने पर ही उसके आगमन की संभावना हो सकती है। सो जाऊं तो समझ लेना, कि तुम्हारा गाना प्रबल प्रभावशाली है।

उसने मुझे चद्दर उढ़ा दिया। कहा, अच्छा!

पास ही बैठी वह धीमे स्वर में स्व-निर्मित एक लोरी गाने लगी। स्वर की मधुरता तो जिन्दगी भर नहीं भूल सकूंगा, लेकिन लोरी के बोल उसी समय भूल गया। नींद आ गयी। स्वर का प्रभावशाली होना प्रमाणित हो गया।

सुबह उठा, तो देखा नीला अभी भी पास बैठी मेरी ओर देख रही है। सोचा, अजीब पागल है यह, रात भर अपनी कविताएं पढ़ती रही होगी। अभी

भी वह गुनगुना रही है। पास ही चन्दन, सिन्दूर तथा चमकीली अभरक पड़ी है। रात भर मेरा शृंगार करती रही। आंखें खोलते ही, उठाकर चुम्बनों से भर दिया। तंग हो गया। उठकर आइने में मुंह देखा। बुरी तरह से हंसी आ गयी। भारत-नाट्यम् के नृत्यकारों की तरह सारे ललाट पर बड़ी महीन चित्रकारी की गयी थी। गीले चन्दन पर चमकीली अभरक लेपी गयी थी।

कहा, राम आज तेरी वर्षगांठ है। पन्द्रह अगस्त है आज! हिन्दुस्तान की आजादी की सालगिरह के साथ तेरा भविष्य जुड़ जाय, अन्त करण मे यही आशीष देती हूं।

–शृंगार तो खूब हो गया। अब जलूस भी निकाल दो । पन्द्रह अगस्त के इस नायक को भी लोग देख लें।

–सो भी इन्तजाम हो जायगा।

–इतनी गंभीरता मे मत कहो जी।

–तुम्हारी इच्छा पूरी हो, यही तो चाहती हूं।

–तो नहाऊं, धोऊं नहीं? ऐसा ही बना बैठा रहूं?

–बिलकुल ऐसे ही।

–अच्छी बात है। चाय लाओ।

–जो हुक्म। अभी लायी, साहब।

प्रथम प्रसादी की ओर ध्यान गया। लगा कि बड़ी भारी तैयारी की गयी है। बड़ा सा भगोना स्टोव पर थमा हुआ है। पूछा, 'क्यों जी, आज दिन भर चाय ही पीनी होगी?'

–यहां जो कुछ है, वह सब आपके लिए ही है, ऐसी धारणा आप आने कैसे कर लेते हैं? गुलाम को औरों की भी तो सेवा करनी पड़ती है। मेहमान आयेंगे, तो बिना चाय पिये ही चले जायेंगे, क्यों?

–ओहो, तो मेहमान भी आयेंगे! गोया, पूरी दुर्दशा न हो जाय, तब तक जन्म-दिवस मनाने का मतलब ही क्या हुआ? देख लो नीला, जो कोई ऐसी-वैसी बात हुई, तो जान लेना, जंगली आदमी हूं। पीटूंगा।

–बहन को मारने पर पोर में हाथ उग आते हैं।

–ऐसा होता तो अभी तक उनमे कांटे भी लग गये होते।

चाय की प्याली देते हुए कहने लगी, 'नव जलूस निकालने लायक बने हो। इतने खूबसूरत लगते हो। सुनो राम, अब तुम छोटे नहीं हो। आज से

मेरे आस पास जो हैं, वे खुश हो जाय, यही सार्थकता है। इतना ही पर्याप्त है।

—लेकिन जो अपने पास हैं, उनकी संख्या कितनी थोड़ी है, यह जानती हैं!

—अभी तक नहीं जान सकी। जरूरत भी नहीं पड़ी।

—जिस दिन एकाएक यह सवाल गंभीर रूप में उपस्थित हो जायगा, उस दिन क्या जवाब दोगी? यही पूछता हूं।

—जरूरत आने तक उन्हें नाप-तौल रखूंगी। अकेली तो सोच ही नहीं पाती। जिन्हें सोचने, चिन्तन करने की दिव्य-दृष्टि भगवान ने दी है, जो वे देखेंगे, जो वे सोचेंगे, मैं उनका अनुकरण ही करूंगी। वैसे ये भाव-चित्र यदि थोड़े से लोगों को, उनकी संख्या भले कितनी ही कम क्यों न हो, कितनी ही संक्षिप्त क्यों न हो, विशिष्ट चिन्तन की प्रेरणा दे सके, तो मेरे लिए कम संतोष की बात नहीं होगी।

—लेकिन तुम्हारी इस कॉन्सेन्स [अन्तर्बुद्धि] को समझने वाले कितने होंगे? उंगलियों पर गिने जा सकें, इतने। असाधारण पर ही निष्कर्ष आधारित हो जाय, तो न वह व्यापक हो सकता है, न ही उपयोगी।

—मैं तो समझती हू, इसका घेरा सीमित रहे, यही काफी है। इससे अधिक की जरूरत भी नहीं।

—जो असाधारण नहीं, साधारण हैं, उनके लिए तुम भी व्यर्थ नहीं हो?

—उनके लिए काम आने वाले लोग अलग किस्म के होते हैं। बहुत कम। मैं तो उनमें नहीं हू। यामिनी राय बहुतों को अच्छे लगते हैं। लेकिन सारे आर्टिस्ट उनको नहीं भी लग सकते।

—बात साफ नहीं मृणाल। कॉन्सेन्स [अन्तर्बुद्धि] को समझने का दावा करने वालों को भी देखा है। वे चित्र खरीद सकते हैं। देखकर प्रशंसा भी कर सकते हैं और सहज ही भूल भी जाते हैं।

—यह आग्रह तो ठीक नहीं, कि किसी कलाकृति को व्यक्ति हमेशा ही स्मृति में संजोये रखे।

—यह आग्रह नहीं, ताकत होती है, मृणाल। इसे तुम चाहे व्यर्थ मानो, लेकिन मेरी नजरों में इसका मूल्य है।

-पॉइण्ट ऑफ ओर्डर'—नीला ने कहा, 'यह डिबेट नहीं !'

चुप हो गया।

नीला ने मेरे लिए नये कपडे निकाल रखे थे। आदेश दिया, बाथ-रूम में जाकर बदल आऊ।

कपड़े उठाकर बाहर चला आया। यही सोचता रहा, कि मृणाल और मेरे बीच कैसा अजीब-सा आकर्षण है यह ? कला तो उसकी अधिक सचेष्ट प्राण है ! जो रास्ता नहीं जानती, वहा जाने का विचार भी नहीं करती। मैं अनजानी मंजिल की ओर जाने वाला, रास्ते के बारे में जानने के लिए अभी तक इधर-उधर भटक रहा हूं।

वापस आया तो देखा वे सब जाने किस बात पर खूब हंस रही है।

देखा, केवल मृणाल की बहन ही चुपचाप बैठी, सबकी बातें अप्रभावित भाव से सुन रही थी।

नौ :

व्यक्तित्व के बारे मे निर्णय करने का आधार तुलनात्मक ही तो होता है।

अब तक अपने आप को 'कलाकार' समझ कर सतोष कर लेता था। लेकिन मृणाल से मिल कर लगा, अभी तक इतना परिपक्व नहीं हूं कि उसे अपने व्यक्तित्व का केन्द्र-बिन्दु कह सकूं। लगा, कि इस एक लडकी के सामने न तो बौद्धिक श्रेष्ठता के सारांश के सम्मुख ही टिक पाया हू, और न स्वय-चैतन्य कला के प्रमाण में ही !

मृणाल ने मुझे बुरी तरह से हिला दिया।

समझता हूं, कि नीला द्वारा खड़े होने के लिए जो थोडी-सी जमीन प्राप्त हो गयी थी, वहां बीज अंकुरित भी नहीं हो पाया था, कि किसी चंचल वानर ने आकर 'अच्छा है या बुरा,' यह देखने के लिए उखाड़ डाला हो। फिर भी, बीज बिलकुल जड़ नहीं था, इसलिए न तो मैं मर ही गया, न ही मृणाल के

सामने जोर देकर प्रतिवाद ही कर सका । सिर्फ इतना ही जान सका, कि जमीन से उखड़ गया हूं। आधार में कोई मौलिक और गंभीर परिवर्तन चाहिए।

चिन्तित था, कि यह जो फिर से नयी जमीन पाने की और अंकुरित होने की आवश्यकता महसूस कर रहा हूं, उसमें कितना श्रम और कितनी साधना लगेगी ? प्रवाह में अत्यन्त साधारण बन कर जिस प्रकार से बह रहा हूं, उसमें स्थायी और वैज्ञानिक परिवर्तन आवश्यक है। तभी किसी उज्ज्वल भविष्य की आशा हो सकेगी।

सिकुड़ कर किसी छोटी-मोटी सर्विस में छिप जाऊं, यही व्यावहारिक लगा। नीला ने उस दिन कहा था, अर्थ की आवश्यकता को बिना मान्यता दिये, यदि अपनी अहमन्यता को ही विराट रूप में देखने की चेष्टा करूंगा, तो किसी समय पतित होकर गिर पड़ने की संभावनाएं रहेंगी ही। सच भी था, अर्थ है ही ऐसी चीज, कि दो कदम चलना उसके अभाव में मुश्किल हो जाय। जीवन भर का यही तो अनुभव है।

चाहता था, श्री जोगलेकर से मिलकर सर्विस की बात तय करना। लेकिन स्कूल के सामने से गुजरते समय अचानक ही दूसरे दिन मृणाल मिल गयी। कहने लगी, 'घर चल कर साथ ही भोजन करना होगा।' निमन्त्रण में आग्रह, मनुहार, बीती बातों को भुला देने की प्रार्थना, सब कुछ था। व्यतीत को याद कर वह दुखी हो, और यह देख कर मैं दुखी होऊं, यह नहीं चाहता। इसलिए, 'हां' भर ली। नीला के लिए निमन्त्रण मांग नहीं सका, पर बिना उसके वहां जाना कुछ अजीब-सा ही लगा। लेकिन गया। मीमांसा नहीं कर सका, कि जो किसी भी मायने में उसमें अधिक महत्व नहीं रखता, उसके प्रति वह क्यों इतना सम्मान प्रकट कर बैठती है ?

मृणाल को देखकर हीनता महसूस करता हूं, यह स्पष्ट रूप से जानते हुए भी उसके यहां जाकर, अतिथि के रूप में उसके पारिवारिक सम्बन्धियों से मिलकर प्रसन्न ही हुआ।

मृणाल ने जितना स्वागत सत्कार किया उतना ही उसकी मां, बहन तथा भाई ने भी। यह महाराष्ट्रीय परिवार सम्पन्न है, और सुशिक्षित भी। सरस्वती और लक्ष्मी दोनों की कृपा अनायास ही जैसे यहां सम्मिलित हो गयी हो।

यह तो बाद में मालूम हुआ कि मृणाल मेरे प्रति अत्यन्त अनुरागमयी थी। वैसी तो नहीं, जैसी नीला है। वैसी भी नहीं, जैसी मां-अन्नपूर्णा। बल्कि, किसी और किस्म की। अनुभव का यह स्पर्श होना भी सम्भवतः आवश्यक था। इसीलिए परिचय का यह रूप भी सामने आया। अन्यथा किसी क्षणिक विराम का आना, अथवा न आना कोई खास महत्व नहीं रखता।

भोजन करने डाइनिंग टेबल पर सब साथ बैठे। मृणाल की मा ने बहुत-सी बातें पूछ डालीं। उस समय तो वह परीक्षा बुरी ही लगी! लेकिन, अब जानता हूं कि सद्पात्र को अच्छी तरह से परखना उन्होंने यदि आवश्यक समझा हो, तो ठीक ही था।

मृणाल के भाई दिगम्बर से अधिक प्रभावित नहीं हुआ। वे खामोश रहने वाले अत्यधिक रिजर्वड प्रकृति के आदमी थे। शिष्टाचारवश जितनी बात करनी चाहिए, उतनी ही उन्होंने की। इस प्रकार मौन अथवा रिजर्वडनेस प्रकट करने का जो प्रयास वे नाटकीय ढंग से कर रहे थे, वह इतना अधिक डेमोंस्ट्रेटिव [दिखावटी] था कि कुछ अस्वाभाविक सा लगने लगता।

खाना खाने के बाद मृणाल के साथ उसके कमरे में चला गया। उसकी बहन सोना साथ थी। एक-आध साल ही उससे छोटी होगी। लेकिन अत्यधिक गंभीर। बहुत कम हसती। लेकिन जब हसती, तो मुक्त रूप से। इसलिए कुछ अजीब रहस्यमयी सी लगी।

मृणाल ने परिचय कराया, वह शास्त्रीय-नृत्य [क्लासिकल डांस] जानती है। आग्रह किया, कि नृत्य करे, तो उसने स्वीकार कर लिया। ग्रामोफोन रिकार्ड की धुनों पर उसके पैर थिरकने लगे। शरीर का प्रत्येक भाग अभिव्यक्ति का केन्द्रस्थल बन गया। इससे पूर्व मैंने कभी किसी का नृत्य इतने करीब से नहीं देखा था। शायद इसीलिए वह मुझे अपूर्व सुन्दर, रसयुक्त और लयपूर्ण लगा। सोना की प्रशंसा के लिए जो भी शब्द सजोता, वे कुछ कम से लगते। इसलिए नृत्य के समाप्त हो जाने पर एक शब्द भी कह नहीं सका। मुग्ध नेत्रों से देखता ही रह गया।

नृत्य के बाद वास्तव में जैसे वह बहुत प्रमुदित हो गयी। सोफे पर बैठकर सुस्ताने लगी। मेरी ओर देखकर कहा—'भाई साहब, आपके चित्र तो कुछ स्थिरता रखते भी हैं पर इस नृत्य कला में तो कहीं भी स्थिरता नहीं। बल्कि चंचलता न हो तो यह जड़ हो जाय। प्रस्तुत कला के प्रशंसक

चाहे जितने हों, लेकिन नृत्य की अभिव्यक्ति को जरा भी याद रख पाने वाले कितने हैं ? याद आये भी, तो वह जब चाहे दृष्टव्य हो, सुलभ हो, ऐसी बात नहीं। विज्ञान द्वारा दी गयी सिनेमा की सुविधा भी अपर्याप्त ही है।

'फिर इसे क्षण-भंगुर और सीमित क्षेत्र की चीज ही मानने लगू तो रस, स्फूर्ति और लय के दर्शन जिन क्षणों में प्राप्त हो जाते हैं, वे कैसे होंगे ? सवाल यही है, कि कोई श्रेष्ठ क्षण क्यों स्थूल रूप में स्थायित्व प्राप्त कर ही ले ?'

'रहने दे सोना' मृणाल ने कहा 'आज तक जिन्हें तुम्हारे इस रस, लय और स्फूर्ति के दर्शन नहीं हुए थे, उनका जीवन अकारथ नहीं गया था।'

सोना इस तर्क से बच्चों की तरह रूठ कर कहने लगी, 'कोई कूप-मंडूक अपने कूए को सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ आश्रम और स्वर को नादब्रह्म कहे, और इसी आधार पर दूसरों की आलोचना करे, तो सौन्दर्य के किसी भी रूप की कोई हानि नहीं होने वाली। उसके अभिशाप चाहे कितने ही कठोर और बुलन्द क्यों न हों !

लगा कि जो बात कल विवाद बन कर समाप्त हो गयी थी, उसका ही कोई हिस्सा अपनी दुम यहां भी हिला रहा है। तभी सोना इतना साहस कर सकी, कि घर आये अतिथि को अप्रत्यक्ष रूप से इस प्रकार बिना भूमिका के उपदेश दे। समझ गया, संकेत मेरी ओर है। लेकिन व्यवधान नहीं डाला। मेरे पास कोई अनुकूल, सम्बद्ध उत्तर था भी नहीं। तर्क करने की प्रवृत्ति भी नहीं हुई।

'तू जो कुछ कहती अथवा करती है, तेरी उस इच्छा से किसी को कोई लेना-देना नहीं। पर वह सबके लिए आधार रूप में मान्य हो जाय, यह तो जिद्द की बात हुई। मान लिया कि हम कूप-मंडूक हैं। यह भी स्वीकार कर लू, कि तू ने सौन्दर्य के श्रेष्ठतम रूप से सुसज्जित संसार देख लिया है। लेकिन ऐसा तो नहीं कहेगा, कि सौन्दर्य के प्रत्येक अंग की अन्तिम स्थिति तू ने देख ली है। फिर एक छोटा कूप-मंडूक हुआ, दूसरा कुछ बड़ा। रहे दोनों मेंढक के मेंढक ही। –मृणाल मराठी में ही कहने लगी।

मैं बैठा सोचता रहा, यह बम्बई भी अजीब नगरी है! यहां पता नहीं आदमी के दिमाग में कितनी भाषाओं की खिचड़ी पकती रहती है। जाने कितने प्रकार के सद्विचार किंवा कुविचार आपस में अपनी-अपनी हैसियत से निरन्तर संघर्ष करते रहते हैं। हिन्दी अंग्रेजी के अतिरिक्त गुजराती मराठी भी

बम्बई के जीवन मे घुलमिल जाने वाले लोग जान ही जाते हैं। और यह दावा भी कोई नहीं कर सकता कि बम्बई मे रहने वाला व्यक्ति किसी एक ही भाषा को अधिकृत रूप मे बोलता है। कम से कम मैं जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आ सका हूं, उन सबकी भाषा में इन चारो भाषाओं का अजीब-सा मिश्रण देख चुका हू। इसलिए यहा अपनी विगत स्मृति के आधार पर जो कुछ भी कहूंगा, वह इन भाषाओं का अनुवाद ही होगा। फिर यह आत्म-कथा है, सो स्वाभाविक रूप से इन सारी बातों में मेरी खुद की भाषा ही तैर आयी है। यह नवीन बात नहीं। परम्परानुगतता है।

सोना अंग्रेजी में कहने लगी, 'अकबर ने बीरबल से पूछा, यह एक लकीर है, बिना किसी तरह का परिवर्तन किये, इसे छोटी कर दो । बीरबल ने पास ही एक बडी लकीर खीच दी । बिना किसी परिवर्तन के पहली लकीर छोटी हो गयी । तुलना होगी, तभी तो कौन ऊंचा, कौन निम्न, इसका निर्णय हो सकेगा । ऊंचाई जिन्होंने प्राप्त नहीं की है, वे नीचाई को देख कर ही अपनी स्थिति को जान सकते है ।'

मुझ से न रहा गया, पूछा, 'सवाल सिर्फ परिणाम का ही नहीं है, उसके फल का भी है। नृत्य-कला में प्रशंसा के अतिरिक्त मुझे कुछ दिखायी ही नहीं देता । इसलिए कि इससे अधिक कुछ जानता नहीं । सो मेरी प्रशंसा अथवा आलोचना दोनों एक ही स्तर की मानी जायगी । आप ही अपने बारे में अधिक जान सकतीं हैं, इसलिए सहज जिज्ञासावश पूछता हू, कि आप कला के इस प्रदर्शन द्वारा दर्शक से क्या अपेक्षा करती हैं ?

—कला का एक मात्र जो उद्देश्य होता है, वही । आनन्द, चिर आनन्द ! जीवन की जिन रागनियों में आनन्द छिपा हुआ है, उसे मूर्त रूप देकर प्रस्तुत कर देना अपने आप में कम महत्वपूर्ण नहीं ।

—आनन्द की बात साफ नहीं हुई सोना । क्षणिक सुख के विलास को आनन्द कह देना तो गलती ही होगी । मान लीजिये, किसी ने थिएटर अथवा फिल्म में नृत्य देखा । यह सौभाग्य तो कम लोगों को ही नसीब हो पाता है कि वे मेरी तरह, आज की भाति एकान्त रूप से, अधिकार पूर्वक देख सकें । जो भी हो, क्या ऐसा विश्वास किया जा सकता है कि नृत्य की श्रेष्ठतम मुद्राओं

को देखकर, दर्शक अन्य सारी चीजों को भूल कर, प्रस्तुत आनन्द को सचित मान कर सतुष्ट हो जायगा।

सोना ने कुछ ऊचे स्वर में कहा, 'आनन्द की ऐसी फिलासफिकल टेढ़ी-मेढी व्याख्या करके जो उसे उधेड़ डालना चाहते हैं, उनके प्रति मुझे कोई आपत्ति नहीं। अष्ट-सिद्धि प्राप्त करने के पूर्व भी व्यक्ति निरानन्द हो सकता है, और उसके बाद भी। रही कला की बात। सो यह तो व्यक्ति के ग्रहण और उसके सौष्ठव से सम्बन्धित चीज है। जो इसे जिस मात्रा में प्राप्त कर सकता है, उसके लिए वह उतना ही बड़ा वरदान है। बाद की अवस्था की कल्पना करके, उसे क्षुद्र कह देना, तो किसी भी आदमी को ख्वामख्वाह अपमानित करना ही है। इससे मानवीय विकास की उम्मीद नहीं की जा सकती।'

सोना के इस वक्तव्य से खामोश बैठी मृणाल ने मेरा पक्ष लेकर तर्क प्रस्तुत किया —तुम्हारे विचारों को मान लेने में कइयों को लाभ हो सकता है। लेकिन इनका प्रश्न यह है, कि तुम्हारी ग्रहण-शक्ति की शर्तों को स्वीकार करने मे जो असमर्थ हैं, उन्हें भी यह कला लाभ दे सकती है क्या ? जो 'शास्त्रीय' के हिज्जे भी ठीक से नहीं जानते, तुम्हारी यह कला उन्हें लाभ पहुचा सकती है ? उनके लिए भी क्या कोई कण्ट्रीब्यूशन [देन] है ? मान लेने में कोई हर्ज नहीं, कि नृत्य आनन्द के विकास की चरम सीमा का उद्बोधक अग है—कि आदमी सुखी हो, तो नाचे, गाये। सुखी होने के लिए जो अनुप्राणित कर सके, वह यह नहीं है। और नहीं है, तो जिद से प्रमाणित हो भी नहीं सकेगा।

मैने सोना का बचाव किया, 'मृणाल, व्यक्ति की सीमा और शक्ति का भी ख्याल रखना होगा। यह सोचना तो हसी की बात होगी कि सोना का नृत्य सारी साधारण जनता के लिए भी सुलभ हो। चाहे इससे कितना ही बड़ा राष्ट्रीय हित क्यों न होता हो। और हर कला राष्ट्र-हित अथवा बड़ी सख्या मे ही शुभ मानी जाय, सार्थक मानी जाय, यह पैमाना भी स्थायी रूप से सही नहीं।'

सोना खुद ही बहुत कुछ कहने को तैयार थी, इसलिए मेरे तर्कों की ओर बिना ध्यान दिये ही कहने लगी, 'यदि ऐसा करना ही पड़े कि साधारण जनता को भी, यह असाधारण रूप से क्षणिक अथवा स्थायी आनन्द प्रदान कर सके और यह भी मान लू, कि मुझ में शक्ति और सामर्थ्य भी है,

तो भी, कला की विवेचना-हीन 'भैंसों के आगे वीन वजाने' का गौरव न हासिल किया जाय, तो क्या बुरा है जी ?

तुमने ठीक कहा सोना, मैं बोला—'जिन्होंने इस बात को स्पष्ट रूप से संक्षिप्त क्षेत्र में स्वीकार कर लिया है। वे सचमुच बहुत सुखी हैं। प्रश्न तो उन अभागों का है, जो अपनी कला को, अपने प्राणों को, समाज की प्रगति के नाम पर न्यौछावर करने को तैयार हैं। दुखी तो वे हैं। समस्या उन्हीं की अधिक चिन्तनीय है।

सोना ने मृणाल की ओर कुछ ऐसी नजरों से देखा कि वह चिढ़ कर मुंह फेर कर चुप हो गयी। एक क्षण के लिए मौन निःस्तब्ध हो गया। एकाएक वह उठ खड़ी हुई। कहा, मैं चलती हूं, काम है। जाते समय मुझे भी साथ ले चलना।

अंतिम वात कहते-कहते, जैसे वह काली हो गयी। उदासी विजली की तरह तड़क कर विलीन हो गयी। वह एकाएक मुड़कर तिर्छी होकर तेजी से बाहर चली गयी। दरवाजे पर लगा हुआ मोटा पर्दा हिलता रहा।

कमरे में मृणाल के साथ अकेला रह गया।

मृणाल ने कहा, कल साथ थी। वहां तो चुपचाप बैठी रही। घर आने पर मां और भैया से वात कर रही थी, तो वहां भी दाल भात में मूसलचंद की तरह बहुत कुछ वक गयी। कसर यहां भी नहीं छोड़ी।

दबी हुई सर्द आह लेकर उसने कहा, '—खैर। राम, इसे मैं बहुत प्यार करती हूं।'

इस स्पष्टीकरण का अर्थ बहुत दिनों के वाद समझा।

मैंने कहा:-मृणाल सौभाग्य है तुम्हारा, कि तुम ऐसे परिवार में हो। ऐसे स्निग्ध वातावरण और सम्पन्न आजादी में रहती हो। सच, ईर्ष्या होती है।

मृणाल ने धीरे से, रुक-रुक कर कहा, इस परिवार में एक ही आदमी की कसर है। उसके विना एक बड़ा भारी गेप [रिक्तता] है।

-गेप ?

-तुम इस परिवार को पसन्द करते हो, राम ?

-करता हूं।

-मुझे सारे अपराधों के लिए माफ कर सकते हो ?

जैसे आकाश में उड़ रहा हूं। इससे अधिक कहने का अवकाश ही नहीं मिला, 'हां। करता हूं।'

–राम!

कह कर वह रुक गयी। जैसे सती को अपना अन्तिम वक्तव्य मृत-लोक में रह जाने वाले व्यक्तियों को सावधानी के साथ, धीरज के साथ, तौल-तौल कर देना होता है, उसी तरह से उसने कहा, 'राम तुम्हें स्थायी रूप से अपने पास—विश हूं मेरी थू।

विवाह का ऐसा प्रस्ताव किसी भीरु के सामने इस रूप में प्रस्तुत नहीं हुआ होगा। जिससे मन ही मन डरता रहा हूं, उस पर अधिकार जमाकर 'हां' कह दूं, यह हो तो सकता था, लेकिन हुआ नहीं। उत्तर नहीं ढूंढ सका, तो सोचने के लिए समय मांगा। पूछा, 'क्या मतलब ?'

–राम, कुछ ऐसे सम्बन्ध भी होते हैं, जिन्हें स्वीकार करने के लिए व्यक्ति बाध्य है। इसे आग्रह कहो।

–सो ?

–सोचती हूं, बिना भावावेश के, और यह जान कर कि मैं क्या हूं, और मुझे क्या चाहिए, मैं रोमांस की प्रवचना में नहीं पड़ना चाहती। इसलिए फाइनली [अन्तिम रूप में] जानना चाहती हूं, कि तुम्हारी स्वीकृति का अर्थ क्या विवाह हो सकता है ?

–एक सम्बन्ध नीला से है, कि उसका मुझ पर अखण्ड अधिकार है। जैसा तुम कह रही हो, वैसा आग्रह भी है। उससे बिना पूछे तुम्हारे बारे में इतनी गम्भीर सलाह नहीं दे सकूंगा।

–यही जानना चाहती हूं राम, कि तुम्हारी अपनी राय में, मैं तुम्हारे लिए उपयुक्त हूं या नहीं ?

चुप होकर सोचने लगा। इजाजत चाही, मुझे विचार कर लेने दो।

एक दिन बिना भविष्य की रूपरेखा जाने, प्रतिज्ञा कर गया था। उस दिन सोच रहा था, कि संसार की श्रेष्ठतम सुन्दरी के उपहार रूप में प्रस्तुत होने पर भी कह सकूंगा, 'मैं इसे भी त्यागता हूं।' लेकिन आज देखता हूं, कि इस त्याग में जय नहीं, पराजय है। वैभव नहीं, दरिद्रता है। आत्म-तिरस्कार है, समर्पण और अर्चना का अपमान भी।

किसी दिन जो अछूता निर्णय ले बैठा था, उस पर दृढ़ दृष्टि से विचार कर, निष्कर्ष निकालना मेरी अपनी नजरों में शोभास्पद नहीं। लेकिन यह एक क्षण के लिए भी भूल नहीं सका कि अभी तक अपने आप को संभाल नहीं पाया हूं। बंजर भूमि में पड़ा बीज अकारथ ही जायगा।

इसीलिए समस्त प्रलोभनों के बावजूद भी अपने साथ छल नहीं कर सका। यही कहा, 'इस प्रश्न पर स्वीकारात्मक दृष्टि से विचार करने के लिए मेरे पास एक भी कारण नहीं है, मृणाल। तुम प्रिय हो, इसे जीवन के अंतिम दिन भी नहीं भूल सकूंगा। लेकिन इस समय, मैं उस दृष्टि से विचार नहीं कर सकता। अभी और भी मुझे बहुत कुछ करना है। वह अधिक. ... . !

निर्णय को सुनने का धीरज मृणाल में था। इसलिए अपनी व्यग्रता को पलक झपकते ही वह छिपा गयी।

तभी सोना आ गयी। दोनों को मौन देखकर, हंसकर कहने लगी, 'हे प्रभो आनन्ददाता, ज्ञान इनको दीजिये।'

मैंने कहा, चलूं!

मृणाल उठ खड़ी हुई। धीरे से कहा, अच्छा, नमस्कार।

सोना हम दोनों की ओर देखती रही।

मृणाल ने कहा, कार का इन्तजाम करवा देती हूं। छोड़ आयेगी।

–नहीं। कोई जरूरत नहीं। पैदल चला जाऊंगा।

सोना की ओर मुड़ कर देखा। कुछ पीड़ा-सी हुई, कहा, सोनाजी आज आपसे पहली बार मिला। मिल कर सुखी ही हुआ। नमस्कार करता हूं, कभी कहीं मिल जाऊं, तो इस क्षणिक मिलन के सहारे ही पहचान लीजियेगा।

मुड़ कर मृणाल की ओर देखना चाहा, लेकिन सिर झुका कर तेजी से सीढ़ियां उतर गया।

समझता हूं, उस दिन सोना को जितना दुख हुआ होगा, उतना सम्भवत. मृणाल को भी न हुआ हो।

कारण तो बहुत दिनों के बाद जान सका।

इसलिए सह–पात्रों में नीला के पश्चात भी किसी को श्रद्धांजलि चढ़ायी जा सकती है, तो इस महापात्रा, महाभागा सोना को ही।

कला का ऐसा उपयोग किस प्रकार हो कि मैं युग-पुत्र साबित हो सकूं, इसकी राह अंतिम रूप से खोज नहीं सका। लेकिन यह निश्चय अवश्य था, कि लक्ष्य के प्रति ईमानदार रह कर, अन्त में एक न एक दिन मंजिल हासिल कर ही लूंगा।

खाना खाने के बाद, घर से निकला। कल बहुत थोड़े में बहुत बातें हो गयीं थीं। उसी पर विचार कर रहा था। अचानक मृणाल की याद आयी, कि उसे एक बार देख लूं। कहूं, कि 'कल जो कुछ कहा था, वह अंतिम नहीं था। तुम इन्तजार करो, मैं सोचना चाहता हूं। अनुकूल निर्णय कर सकूं, इतना अवसर दो।'

लेकिन यह अच्छा नहीं है, ठीक नहीं है, यही बारम्बार लगता। इसलिए जोगलेकर के घर की ओर चला गया। वहां ताला बंद देखा तो लौट आया। घर लौटने के बजाय स्कूल जाकर लायब्रेरी में बैठूंगा, यही संकल्प लेकर वहां गया। बैठा, कुछ पुस्तकें पलट रहा था कि मृणाल की नजरों में आ गया। देखा, तो पास आयी। जैसे कल कुछ हुआ ही न हो, कहने लगी –आओ, चाय पीयें।

नहीं चाहता कि मृणाल मेरे लिए वह सब करे, जो मैं प्रत्युत्तर में नहीं कर सकता। इसलिए उसके साथ नहीं गया। कारण बताने में कुछ संकोच भी था। अच्छा यह हुआ कि उसने विवाद नहीं किया।

कहने लगी –राम, तुम्हें बताने के लिए एक पेंटिंग लायी हूं। देखोगे?

विशेष प्रवृत्ति न होने पर भी कहा – 'हां।'

अपनी क्लास से पेंटिंग उठा लायी। ऑइल-कलर में बना हुआ बड़ा-सा चित्र था। अखबारी कागज को हटाते हुए बोली.–तुम पसन्द कर लो, तो फ्रेमिंग करा दूं।

देखा। चित्र सुन्दर था। शीर्षक था, 'क्रौंच-वध।' युगल-क्रौंच बहेलिये के तीर से घायल हो गया था। महाकवि वाल्मिकी नेत्र मूंदे राम का ध्यान कर रहे हैं। बहेलिया श्राप-ग्रस्त भयातुर-सा आदिकवि की ओर देख रहा है। राम

जैसे चरित्र-नायक को अमर कर देने वाले वाल्मिकी, अपनी कल्पना को अमरत्व प्रदान कर सके, लेकिन उस नर-क्रौंच को कवि की महानतम करुणा भी जीवित नहीं कर सकी, सो नहीं ही कर सकी। यही चित्र का भावार्थ था।

–मृणाल द्वारा इस चित्र का मुझे दिखाया जाना।

–एक-एक रेखा की भाषा इतनी स्पष्ट!

–इस माध्यम से मेरे लिए कौनसा संदेश है?

–क्यों नहीं, वह आदमी की विवशता को एक सीमा तक स्वीकार कर लेती?

–आदमी, आदमी है। वह देवता नहीं हो सकता—ऐसा देवता, जो 'है' को 'नहीं' बना सके, और 'नहीं' को 'है'।

–नर क्रौंच को जीवित न कर पाने की महाकवि की असमर्थता के कारण क्या उनके महाकाव्य की सिद्धी को स्वीकार नहीं किया जायगा?

–अपनी असमर्थता को देखकर यदि वे चुप बैठे रहते, और उस करुणा से प्रस्तुत महाकाव्य का निर्माण नहीं होता, तो उनका क्रोध अधिक दयनीय हो जाता। श्राप मात्र ही तो पर्याप्त नहीं। उसका सृजनात्मक, रचनात्मक उत्तर भी तो चाहिए!

चित्र को हाथ में लिये काफी देर तक गौर से देखता रहा।

कहा, 'मृणाल यह मांगता हूं। दो। कुछ चीजों को भूलना नहीं चाहता। यह उनकी याद दिलाता रहेगा।'

कृतित्व की प्रशंसा से प्रसन्न ही हुई। बोली–तुम्हारे लिए ही है, दूंगी, लो!

चित्र को वापस कागजों में लपेट, उसे नमस्कार कर, अभिवादन स्वीकार कर, स्कूल से बाहर निकल आया।

वहां से अन्नपूर्णा के घर गया। दरवाजा बंद था, लेकिन ताला लगा हुआ नहीं था। घर पर हैं, यह मालूम हो गया। घंटी बजायी तो किसी ने धीरे-से दरवाजा खोल कर झांका। मेरी ओर गहरी दृष्टि से देख कर पूछा–क्या है?

कहा, राम हूं। साहब से मिलना चाहता हूं।

वापस दरवाजा बंद करके उसने यही दुहरा दिया। शायद मेरे प्रवेश की इजाजत मांगी गयी। मिल गयी; तो दरवाजा खुला। मैं अन्दर चला गया।

शराब की दुर्गन्ध से सारा ड्राइंग रूम भरा हुआ था। पुलिस में नौकरी करते हुए भी जोगलेकर साहब शराब पीते हैं! सो भी माँ-अन्नपूर्णा के घर में होते हुए भी! ऐसी कल्पना नहीं थी। इसलिए विरक्ति से मन कड़ुआ हो आया।

कहने लगे—'हलो राम, कैसे हो? बहुत दिनों से आये।'

मैं जवाब नहीं दे सका। मेरी दृष्टि शराब की बोतल पर जमी हुई थी। उन्होंने देख लिया। कहने लगे 'यस, राम, सचमुच यह अच्छी चीज नहीं। आदत सुधर सकती है। पर लत नहीं। यह पुलिस-खाता कुछ ऐसा ही है! इसके बिना काम नहीं चलता।

उनकी सफाई के बावजूद भी मन की कुंठा गयी नहीं। इस सम्बन्ध में बोलने का अधिकारी नहीं हूँ, यह जानकर चुप ही रहा। इशारे से कुर्सी पर बैठने के लिए कहा गया। चुपचाप धीरे से जाकर बैठ गया।

उस अपरिचित आदमी ने सोडे की बोतलें निकालीं। शराब की भूरे रंग की बोतलें टेबल पर चमक रहीं थीं।

इससे पहले कि वे ग्लासों में शराब ढालें, किसी ने दरवाजे की घंटी बजायी। वह अपरिचित उठा। चिढते हुए उसने दरवाजा खोल कर झांका। लेकिन पहले की तरह उसने किसी के आगमन की सूचना नहीं दी। इजाजत भी नहीं मांगी। वह पीछे हट गया। दरवाजा खुला ही रहा और पुलिस-विभाग के कोई बड़े पदाधिकारी अन्दर चले आये।

नवागन्तुक पुलिस अधिकारी कोई वृद्ध सज्जन थे। रौबीली मूछों से उनके व्यक्तित्व की कठोरता और दृढता चमक रही थी। उपस्थित वातावरण से उनका चेहरा विकृत हो गया। मजबूत आवाज में उन्होंने कहा, यह सब क्या है? 'ऐसा आप कर सकते हैं, उम्मीद नहीं थी!

मैंने देखा, पलक झपकते ही जोगलेकर महोदय सभल गये। मेरी ओर क्रोधित नजरों से देख कर बोले, 'ऐसे तू नहीं बतायगा। थाने जाने पर सब उगल देगा। देखिये तो इसकी जुर्रत! जहां पर मैं रहता हूँ, उसी बिल्डिंग में यह धधा करता है!'

नवागन्तुक अधिकारी का क्रोध ढीला हो गया। अपराधी बना मैं इस नवीन परिस्थिति को समझने की कोशिश करने लगा। ऐसी कृतघ्नता और नीचता की उम्मीद नहीं थी। डर और उत्तेजना से अवरुद्ध उस वातावरण में

एक क्षण के लिए भी बैठना असह्य हो गया। भर्राये हुए स्वर में मैंने बोलने की कोशिश की 'मैं .. .. .।'

पर्दा हिला। अन्नपूर्णा-माँ अन्दर चली आयीं। लगा कि जो कुछ हो चुका है, वह उन्हें मालूम हो गया है। नवागन्तुक अधिकारी ने उन्हें नमस्कार किया। वे आते ही कहने लगीं, 'इस लड़के को और इन सारी गन्दी चीजों को यहाँ से हटाते क्यों नहीं ?'

मैं निःस्तब्ध खड़ा रहा। मन ही मन कहा, 'हे भगवान।'

-यहाँ खड़े रहना भी कितना मुश्किल है।'—अन्नपूर्णा बोलीं।

अधिकारी-महोदय के सामने बात स्पष्ट हो गयी। जोगलेकर साहब इस नाटक में निर्दोष घोषित हो गये। अपराधी मैं, ठगा-सा खड़ा रहा।

-आपके लिए चाय का इन्तजाम करो।

-अभी लायी। आप सब लोग स्टडी-रूम में बैठिये। आइये।

जोगलेकर साहब उन्हें अन्दर स्टडी-रूम में ले गये। जैसे कोई बहुत जरूरी बात कर रहे हों, दोनों एक दूसरे में व्यस्त हो गये।

ड्राइंग रूम से जाते हुए इन लोगों को मैं घृणा, जुगुप्सा और तिरस्कार की दृष्टि से देखता खड़ा रहा। उन सबके कमरे से निकलते ही अन्नपूर्णा ड्राइंग रूम में आयीं। उनकी आँखें छलछला आयीं थीं। बोलीं, 'राम, यह जाहिर मत होने देना कि वे शराब पी रहे थे। मेरी कसम, ऐसा मत कहना। मैं तुझे छुड़ा लूंगी। मेरे लिए इतना करना।

मैं चुपचाप अपराधी की तरह खड़ा रहा। जिसे माँ कहता था, उसी ने अपराध स्वीकार करने के लिए कहा था।

सोचा, माँ-अन्नपूर्णा के किसी काम आ सकूं, उनके एहसानों से उऋण हो सकूं, यह है सौभाग्य की बात। लेकिन, जो कानून की दृष्टि में गुनहगार हैं, उनके लिए झूठ बोलकर, अपना अहित करके, जोगलेकर के साथ क्या न्याय कर सकूंगा ? अपने को शहीद करके भी, गौरव करने लायक मेरे पास क्या रह जायगा ?

लेकिन माँ-अन्नपूर्णा की कसम ? उनकी अधीर व्याकुलता ? आह, उन्होंने इस गुनाह पर मुझे भी दाव पर लगा दिया।

चाय पीकर वे सब लौट आये। मेरी ओर देखकर वे उच्चाधिकारी महोदय कर्कश आवाज में बोले, 'सूरत से कितना भोला लगता है। क्यों बे, क्या नाम है तेरा ?'

–राम।

–कहां से लाता है यह ?

कोई जवाब नहीं दिया।

–क्यों रे, तुझे भी यह लत है क्या ?

मैं चुप रहा।

एक बार जी में आया कि सब कुछ सही-सही बताकर इस प्रपंचसे मुक्त हो जाऊं। नीच आदमियों के लिए अपने माथे पर कलंक लेना कैसी लज्जाजनक बात है। लेकिन जबान जड़ बन गयी। एक शब्द भी नहीं कह सका। 'क्रौंचवध' चित्र वहीं पड़ा रहा। किसी ने मुझ पर दया नहीं की।

मैंने तन कर, माथा ऊंचा करके, कानून के सामने अपने को अपराधी घोषित कर दिया।

उन्होंने जाते-जाते एक बार फिर पूछा, किस अड्डे से लाता है ? किसके लिए लाता है ?

जानता नहीं था। कहा, मालूम नहीं।

–अभी मालूम हो जायगा। हटाओ इसे।

शायद अन्दर जाकर जोगलेकर साहब ने थाने फोन कर दिया था। दो कान्स्टेबल आ गये। एक ने हाथ पकड़ा। दूसरे ने वह मादक–द्रव्य कब्जे में कर लिया। बाहर जीप खड़ी थी। उनके साथ जाकर बैठ गया।

थानेदार ने आंखों देखी, रंगे हाथों गिरफ्तार होने की रिपोर्ट लिखी। फिर जीप में बिठा दिया गया। वहां से अनजानी जेल में गया। एक छोटे से तंग कमरे में बंद कर दिया गया। पास–पास और भी अनेक कमरे थे। मालूम हुआ, अपराधियों की कमी नहीं।

–कौन जाने इनमें अपराधी कितने हैं, और मासूम, निर्दोष, निर्बोध कितने ?

–घर पर नीला मेरा इन्तजार कर रही होगी।

–मां किस मुंह से यह समाचार उस तक पहुंचा सकेगी ?

–मृणाल सुनेगी तो वह क्या सोचेगी ?

अकेला हुआ तो मृणाल की याद बार–बार आने लगी। सोचा, ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर किसी रूपसि के बारे में सोचना 'मनसा' का संस्कार नष्ट करना है।

फिर भी मन में अनचाहे, अनजाने विचार दौड़ते रहे। किसी को बहुत कुछ कहने के लिए व्याकुल होने लगा। जोगलेकर के प्रति घुमड़ रही घृणा

अन्दर ही अन्दर फुसफुसा कर रह गयी। अन्नपूर्णा-मा को भूल जाना चाहा। वह असत् है। असत् चिन्तनीय नहीं। मृणाल भी विचारों का केन्द्र बनने की अधिकारिणी नहीं। वह वर्जिता है। रही एक नीला, वही. । उसी के बारे मे सोच-सोच कर दुखी हो जाता हूं। वह मेरी कष्ट-गाथा सुनेगी। पुलिस की हिरासत में हूं यह जान जायगी तो दुखी होगी। रोयेगी। उसकी विवशता मुझ से कहीं अधिक गम्भीर और दयनीय होगी।

जेल में हूं। परवश हूं। दंड मिलेगा। जाने कितने अर्से तक यहा रहना पड़े। जाने क्या-क्या भोगना हो? बाहरी दुनिया के बारे मे सोचना गुनाह है, उसमे मन को अधिक क्लेश होगा। अधिक दुख होगा। इसलिए आखे बद करके सब कुछ भूल जाने की कोशिश करने लगा।

रात होने वाली है। शायद हो गयी हो। कोठरी के अंधकार मे समय का ठीक अन्दाज नहीं हो सकता।

जोगलेकर साहब के यहा से निकला था, उस समय पांच बजे थे। इस समय शायद आठ बज रहे होंगे। बाहर के नीले आसमान में तारे निकल आये होंगे। सड़क पर बत्तिया जल उठी होंगी। नीला भोजन बनाकर, मेरा इन्तजार करती हुई मन ही मन गुस्से हो रही होगी कि अभी तक राम आया नहीं।

मृणाल कोई चित्र बना रही होगी। उसकी बिखरी हुई लटे माथे पर उड़ आयीं होगीं। वह अपनी आदत के अनुसार कोहिनी से उन्हें हटा कर, दत्तचित्त होकर अपने काम में लग गयी होगी। कितनी स्पष्टवादी है! ऐसे लोगों में स्पोर्ट्समेनशिप प्राय नहीं होती। लेकिन उसमे है। मैने उस दिन नहीं कह दिया तो वह खामोश हो गयी। पर परिचय इति नहीं हुआ। वह मुझसे अपने चित्रों की प्रशंसा की उम्मीद करेगी। उसके एक-एक चित्र मे है आशा का अजस्र प्रवाह। लेकिन वास्तविक जीवन की इस भयानकता में आशा के ये केन्द्रबिन्दु कितने क्षीण और दरिद्र हैं?

नीला भूखी बैठी होगी। अब चिन्ता करने लगी होगी। शायद उसे मालूम हो गया होगा कि मैं हवालात मे बंद हू। सम्भवत. उसे कल मालूम हो, और वह सारी रात दुश्चिन्ता के मारे जागती हुई ही बिता दे। जब उसे सब कुछ मालूम हो जायगा, तो कारण भी छिपा नहीं रहेगा। उस दिन नीला

के सामने ही 'अन्नपूर्णा' नाम मैंने अपनी ओर से रखा था। यह इतना गलत तो नहीं होगा कि वे नीला को सारी बात न बता दें।

भगवान करे, उसे सही बात मालूम न हो। अन्यथा सब कुछ सही-सही बताने के सिवाय मेरे पास कोई उपाय नहीं रह जायगा।

खाना आया। रुचि नहीं थी। दो-एक कौर लेकर तसला हटा दिया। सोचते ही सोचते सो गया। वार्डर आया। उसने बातचीत करने की कोशिश की। मैं चुप ही रहा। टाट का टुकड़ा बिछा कर लेट गया। नींद आ गयी।

सुबह पेशी हुई।

चौक में खड़ा कर दिया गया। दोनों हाथ बांध दिये। पूछा, बताओ, अड्डा कहां है?

नहीं बता सका। बता सकता, तो भी बताता—सन्देह है।

चुप रहने के अपराध में मार पड़ी। एक आदमी दूसरे आदमी को जितना पीट सकता है, पीटा। शरीर का कष्ट दुख तो देता ही। बारम्बार मन को धीरज देने की कोशिश करता, 'इतना करके मां—अन्नपूर्णा के ऋण से मुक्त हो जाऊं, यह सौभाग्य है।' अपने को निर्विकार रखने का प्रयत्न करना चाहता था, पल भर के लिए भी अन्नपूर्णा के प्रति विरक्त न होऊं। जो कुछ भी हो रहा है, वह उनके प्रेम और अधिकार के बल पर ही तो!

ओह, उस पीड़ा को याद कर, आज भी सिहर उठता हूं।

शरीर क्षत-विक्षत हो गया। रक्त तो देख ही सकता हूं। और अपना गाढ़ा रक्त। चिल्ला-चिल्ला कर अपराधी से गत अपराध की सूची जानने की पुलिसवालों की कोशिश अविराम गति से चालू है।

कितनी निष्ठुरता!

आगे मूढ़े मार खाता रहा।

तभी किसी की चीख से आंखें खुल गयीं।

नजर उठाकर देखा, सामने जाली के पास नीला खड़ी थी। विवश-क्रोध और आकुल करुणा से उसका चेहरा तमतमा रहा था। आंखों में आंसू थे। भर्राये स्वर में बोली 'राम, !'

आवाज सुनी। उत्तर नहीं दे सका।

लगा कि उसकी उपस्थिति नहीं होती, तो दूसरी सांस लेने के लिये जिन्दा नहीं रहता।

वह यहां कैसे आयी, यह नहीं जान सका। लगा कि उसका उपस्थित होना अनिवार्य था। इसलिए वह मौजूद थी। बस, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

जैसे किसी अवांछनीय निर्बल पशु को धक्का देकर फेंका जा सकता है, ठीक उसी तरह धक्का देकर, अपमानित करके किसी ने उसे वहां से जबर्दस्ती हटा दिया।

वह चीखती रही, 'राम निर्दोष है! अरे हत्यारों, उसे छोड़ दो। मैं सब सही-सही बताती हूं।' तड़प कर, हाथ छुड़ाकर वह जाली के पास आकर खड़ी हो गयी। उसकी अंगुलियां जाली के छेदों से मुझे दिखायी दे रहीं थीं। उसकी बंद होती मुट्ठियों को लोहे की जालियां काट रहीं थीं। खून गिर रहा था।

मैं चैतन्य नहीं था। खो गया था। ऐसा याद आता है कि एक बार मुंह से निकल गया, 'नीला, तुम जाओ। कष्ट होता है।'

नहीं जानता, उसने सुना या नहीं।

दर्द अधिक होने लगा था, शरीर का भी, मन का भी। बेहोशी में झुक-सा गया।

ग्यारह :

एक ही दिन मार खानी पड़ी। प्राथमिक डाक्टरी उपचार के बाद छोड़ दिया गया। जो कुछ हो चुका था, उसके अतिरिक्त यह मालूम हुआ कि जोगलेकर महोदय की कृपा के कारण मुक्त हो सका। यह भी छिपा नहीं रहा कि नीला रिश्वत देकर, रुपये देकर, मुझे देखने के लिए आयी थी। शायद उसे सब कुछ मालूम हो गया था। हो सकता है, छुड़ाने के लिए भी उसने रिश्वत दी हो।

मार खाने से जितनी चोट नहीं लगी, उतनी यह जान कर, कि नीला ने मुझे देख लिया था, और वह बहुत दुखी हुई थी।

मारे शरीर में दर्द हो रहा था। रास्ते चलते व्यक्तियों की सहानुभूति से भरी नजरें बधी हुई पट्टियों की ओर उठ जाती। मैं गर्दन नीची करके मानों मारे रहस्य को छिपा लेता।

एक मौका मिला था कि कुछ भले व्यक्तियों के सामने सिर उठाकर चल सकू। वह भी अब नहीं रहा। कुछ नहीं, सब कुछ क्षण-भंगुर। मिथ्या—एक दिन नष्ट हो जाने के लिए। जो व्यक्ति जन्म से ही अभाग्य लिये आया हो उसकी मुक्ति कहा? कैसे चैन पाये वह? उसके क्षुद्र सुख के प्रति सबकी ईर्ष्या भरी नजरें अभिशाप बरसाने लगतीं हैं।

घर गया। नीला नहीं थी। दरवाजा बंद था। खड़े होने की सामर्थ्य नहीं थी। भूख लगी थी। नीचे उतर आया।

चौपाटी पर अपार जन-समुदाय आमोद-प्रमोद मना रहा था। शायद रविवार था।

सोचता रहा, नीला कहा गयी होगी? कहां मिलेगी?

...कारी सज्जन कबूतरों के लिए दाने छिटका रहे थे। नजदीक से...

कि कुछ अपने लिए भी ...

क्षुद्र दया की भी ...

पैसा नहीं था ... की तरह तप रही

...नसी ऐसी ... विनिमय में एक वस्त्र का

आऊ, कि ... खाने के लिए हाथ

नीला ने इसे बड़े जतन से

वह बिक जाय, तो ...ना

थे, उनके पास

... के स्वर...

दो कदमों के फासले पर सम्भ्रान्त युगल बैठे हुए थे । उनसे पूछा, 'यह कुर्ता खरीद लेंगे ? आपके काम शायद न आये । लेकिन मैं भूखा हूं, और भीख नहीं मांग सकता । इसलिए इसे बेच रहा हूं ।'

उत्तर मिला, आगे जाओ भाई ।

आगे बढ़ गया ।

भूख के मारे माथे में बगूले-से उठने लगे । चक्कर आने लगे । भूखे रहना नयी बात नहीं । पर किलबिलाते घावों में यह पीड़ा असह्य थी ।

धीरे-धीरे महात्मा तिलक की मूर्ति के पास जाकर बैठ गया ।

तभी कोई पारसी सज्जन दूरबीन लगाकर मूर्ति-दर्शन करने आये । मुझे देखकर कहने लगे, 'ऐसी पवित्र जगह में भी ये गंदे आदमी आकर बैठ जाते हैं । पुलिस ध्यान ही नहीं देती ।'

उठा; आगे बढ़ गया । पैर भारी हो गये, पर इस पवित्र सन्त की मूर्ति पर लाछन लगाना नहीं चाहता था । न ही पारसी सज्जन द्वारा प्रशस्त अव्यवस्था की समालोचना में ही मेरी रुचि थी ।

चौपाटी के पास ही एक बड़ा-सा केबिन है । खड़ा नहीं रहा गया । कुर्ता बेच कर कमाने का उत्साह भी नहीं रहा । इसलिए वहीं बैठ गया । बैठे-बैठे कमर दर्द करने लगी । लेट गया । लगा कि माथे का दर्द भारी होकर सारे शरीर में व्याप्त हो गया है । अपने ही हाथ से दूसरा हाथ देखा । लगा कि तप रहा हूं । सुलगते हुए सोचने लगा अच्छा होता, नीला के दरवाजे पर ही लेट जाता । आती, तो अपने आप चिन्ता करती ।

अब वहां तक पहुंचना सम्भव नहीं । बहुत दूर है !

सामने उत्ताल तरंगों के सम्राट समुद्र को देखा । वह अपनी स्थिर मर्यादा और अविचलित धीरज के साथ लहरा रहा था ।

शीतल हवा से कंपकपी-सी लगने लगी । पैर सिकोड़ने का प्रयत्न करने पर, घावों का दर्द असह्य हो गया ।

सोचा, अभी तक इस संसार से कुछ भी नहीं पाया । बहुत कुछ पाने का विश्वास भी टूटा नहीं । एक दिन ऐसा ही हुआ था, कि अन्त काल में, जब वह वासनाओं से मुक्त होकर लाचार पड़ी थी, तो एक बौद्ध-भिक्षु ने आकर उसे सम्पूर्ण प्रेम प्रदान किया था । वासवदत्ता की सारी वेदना उस दिन शान्त हो

सारे शरीर में दर्द हो रहा था। रास्ते चलते व्यक्तियों की सहानुभूति से भरी नजरें बधी हुई पट्टियों की ओर उठ जाती । मैं गर्दन नीची करके मानों सारे रहस्य को छिपा लेता ।

एक मौका मिला था कि कुछ भले व्यक्तियों के सामने सिर उठाकर चल सकू। वह भी अब नहीं रहा। कुछ नहीं, सब कुछ क्षण-भगुर। मिथ्या—एक दिन नष्ट हो जाने के लिए। जो व्यक्ति जन्म से ही अभाग्य लिये आया हो उसकी मुक्ति कहा ? कैसे चैन पाये वह ? उसके क्षुद्र सुख के प्रति सबकी ईर्ष्या भरी नजरें अभिपाप बरसाने लगतीं हैं।

घर गया। नीला नहीं थी। दरवाजा बद था। खड़े होने की सामर्थ्य नहीं थी। भूख लगी थी। नीचे उतर आया।

चौपाटी पर अपार जन-समुदाय आमोद-प्रमोद मना रहा था। शायद रविवार था।

सोचता रहा, नीला कहा गयी होगी ? कहां मिलेगी ?

एक परोपकारी सज्जन कबूतरों के लिए दाने छिटका रहे थे। नजदीक से देखा। चने थे।

–जी किया कि कुछ अपने लिए भी मांग लूं।

–लेकिन इतनी क्षुद्र दया की भीख ?

नहीं मांग सका।

पास में एक भी पैसा नहीं था। भूख चढती दोपहर की तरह तप रही थी। अपने को देखा, कौनसी ऐसी चीज है, जिसके विनिमय में एक वक्त का खाना मिल सके ? कहां जाऊ, कि बिना किसी स्पष्टीकरण, खाने के लिए हाथ पसार सकू ?

कुर्ता नया था। खोला। वर्ष-गाँठ वाले दिन नीला ने इसे बड़े जतन से बनवाया था। भूख से पागल सोचने लगा, यदि यह बिक जाय, तो खाना खा लू!

कबूतरों के लिए जो सज्जन दाना बिखेर रहे थे, उनके पास गया। कहा, यह कुर्ता नया है, भूख लगी है, इसे खरीद लीजिये।

तन्मयता में बाधा पड़ी, इसीलिए चिड़चिड़ाहट के स्वर में उन्होंने इतना ही कहा, जाओ, जाओ। हटो।

मैं हट गया।

दो कदमों के फासले पर सभ्रान्त युगल बैठे हुए थे। उनसे पूछा, 'यह कुर्ता खरीद लेंगे ? आपके काम शायद न आये। लेकिन मैं भूखा हूं, और भीख नहीं मांग सकता। इसलिए इसे बेच रहा हूं।'

उत्तर मिला, आगे जाओ भाई।

आगे बढ़ गया।

भूख के मारे माथे में बगूले-से उठने लगे। चक्कर आने लगे। भूखे रहना नयी बात नहीं। पर किलबिलाते घावों में यह पीड़ा असह्य थी।

धीरे-धीरे महात्मा तिलक की मूर्ति के पास जाकर बैठ गया।

तभी कोई पारसी सज्जन दूरबीन लगाकर मूर्ति-दर्शन करने आये। मुझे देखकर कहने लगे, 'ऐसी पवित्र जगह में भी ये गंदे आदमी आकर बैठ जाते हैं। पुलिस ध्यान ही नहीं देती।'

उठा, आगे बढ़ गया। पैर भारी हो गये, पर उस पवित्र सन्त की मूर्ति पर लांछन लगाना नहीं चाहता था। न ही पारसी सज्जन द्वारा प्रशस्त अव्यवस्था की समालोचना में ही मेरी रुचि थी।

चौपाटी के पास ही एक बड़ा-सा केबिन है। खड़ा नहीं रहा गया। कुर्ता बेच कर कमाने का उत्साह भी नहीं रहा। इसलिए वहीं बैठ गया। बैठे-बैठे कमर दर्द करने लगी। लेट गया। लगा कि माथे का दर्द भारी होकर सारे शरीर में व्याप्त हो गया है। अपने ही हाथ से दूसरा हाथ देखा। लगा कि तप रहा हूं। सुलगते हुए सोचने लगा अच्छा होता, नीला के दरवाजे पर ही लेट जाता। आती, तो अपने आप चिन्ता करती।

अब वहां तक पहुंचना सम्भव नहीं। बहुत दूर है!

सामने उत्ताल तरंगों के सम्भ्राट समुद्र को देखा। वह अपनी स्थिर मर्यादा और अविचलित धीरज के साथ लहरा रहा था।

शीतल हवा से कंपकपी-सी लगने लगी। पैर सिकोड़ने का प्रयत्न करने पर, घावों का दर्द असह्य हो गया।

सोचा, अभी तक इस संसार में कुछ भी नहीं पाया। बहुत कुछ पाने का विश्वास भी टूटा नहीं। एक दिन ऐसा ही हुआ था, कि अन्त काल में, जब वह वासनाओं से मुक्त होकर लाचार पड़ी थी, तो एक बौद्ध-भिक्षु ने आकर उसे सम्पूर्ण प्रेम प्रदान किया था। वासवदत्ता की सारी वेदना उस दिन शान्त हो

गयी थी। तमाम व्यतीत को भूल कर, वर्तमान के उस सुनहले स्वरूप को देखकर, जो नहीं पा सकी, उसके प्रति सारी शिकायतें उस दिन शेष हो गयीं।

है कोई इस समय, मुझे भी ढूंढ कर उस बौद्ध–भिक्षु की तरह अविभाज्य स्वार्थ–विहीन प्रेम देने वाला ?

–नहीं। नहीं, कोई नहीं।

–एक नीला ?

नहीं, वह भी नहीं। उसके प्रेम से डरता हूं। उसकी करुणा को सह नहीं पाता। इतने उज्ज्वल प्रेम का अधिकारी मैं नहीं। मेरे *पुण्य* का तेज इतना प्रखर नहीं।

आंखें मूंद लीं। समुद्र अदृश्य हो गया। ऊपर खिला हुआ अनन्त आकाश ओझल हो गया। अन्धकार, चारों ओर घोर अन्धकार जिसमें मेरे अस्तित्व का पता नहीं। जैसे खोजने की इच्छा ही मर गयी हो।

•

कुछ होश आया, तो बहुत कमजोरी महसूस होने लगी। अर्द्ध-निन्द्रावस्था में अनेक विचित्र सपनों के बीच भटकते-भटकते मैंने पूरा दिन बिता दिया। रात होने आयी। पास ही आकर कोई बैठ गया था।

आंखें खोलकर देखना चाहा, कौन है ? लेकिन धुंध में साफ दिखायी नहीं दिया।

मुझे जागते देख वह फुसफुसाया। फटे और गंदे टाट से ढंका हुआ हूं, यह जाना। इस कृपा के लिए धन्यवाद दूं, इसलिए उठ बैठा।

–यह नीला नहीं। मृणाल भी नहीं। मां अन्नपूर्णा ? नहीं, वह भी नहीं। अन्तकाल में उनकी कृपा को अपने साथ नहीं ले जा सकूंगा। ऋण–परिशोध की शक्ति अब शेष नहीं रही।

–लगा कि जैसे मौत बहुत करीब आ गयी है।

–जैसे निर्विकार हूं। शांत।

–इस विशाल संसार से किसी एक व्यक्ति का चले जाना कोई अहमियत नहीं रखता। बल्कि एक व्यक्ति का जिन्दा रहना, मौजूद रहना समस्या है।

विचारों का तांता टूट-सा गया। मुड़ कर प्रस्तुत शरणागत की ओर देखा। मुझे होश में आया जान, उसने पूछा, तबियत कुछ ठीक हुई रे ?

–अब ठीक हूं, बाबा। मैंने कहा।

उठ कर बैठते ही सारे घाव हिल गये। प्रार्थना की, 'सहारा दो बाबा। कुछ दूर तक पहुंचा दो।'

–पहुंचा दूंगा। तेरा घर कहां है?

–यहीं, पास ही है।

–तो यहां क्यों पड़ा है?

–भाग्य की बात है। होनी यही थी।

–घर से लड़–झगड़ कर आया है क्या? और यह लगी कहां की?

–पुलिसवालों ने मारा।

कहते हुए आंसू आ गये। लगा कि इसके अतिरिक्त कुछ नहीं हूं, कि एक निर्दोष ने मार खाई है। कहा, मेरा कोई अपराध नहीं था बाबा!

उसने तर्क नहीं किया। यही कहा, ये पुलिस वाले ऐसे ही होते है भाई, और तो कुछ कर नहीं सकते, मगर जब जी चाहता है, गरीबों को उठाकर लारी मे डाल कर ले जाते है। मारमूर कर–उधर भगा देते है। भाग्य की ही तो बात है भइया। नहीं तो, दो हाथ पैर वाले, दो कान आंख वाले इसी दुनियां में सुख भोगते हैं। वैसे ही हम भी हैं, लेकिन दुख लिखा कर लाये हैं, भइया, तो सुख मिले कैसे?

मुझे सहारा देते हुए कहने लगा, यहां पड़ा रहेगा तो और बीमार हो जायगा। चल, किसी मकान की छांह में चलें। आज कितनी ठंड है! मैं तेरे पास बैठा रहूंगा।

सहारा पाकर उठ खड़ा हुआ। बूढ़ा खुद कमजोर था। लाठी संभाले और मेरा बोझ लिये चल रहा था। कपड़ों से बदबू आ रही थी। लेकिन उस समय मुझे वह स्वर्गीय दूत से कम नहीं लग रहा था। आदमी भी कितना स्वार्थी है!

चलते–चलते अपनी धुन में ही वह कहता गया, 'भाई अपने पास धन दौलत तो है नहीं। दया–माया भी नहीं होगी, तो इस जिन्दगी में तो दुख पाया, अगला जमारा भी क्यों खराब करें?'

मैंने उस वृद्ध की ओर देखा। जन्म-जन्मान्तरों से सुख की लालसा लिये ये जीते हैं और मर जाते हैं। फिर भी अखण्ड आशावाद इन्हें जन्म के साथ ही मिल जाता है, 'आज नहीं तो कल, सुख प्राप्त होगा!' कौन जाने,

बीते हुए कल में उन्होंने कुछ पाया या नहीं। लेकिन भविष्य के प्रति इनकी निष्ठा, सारी तिक्तता के बावजूद भी धुंधली नहीं हुई है।

कुछ ही दूर चलने पर हाँफ गया। कहा, बाबा कुछ देर ठहर जाओ। चलने में तकलीफ होती है।

रात हो आयी थी। मोटरों की हेडलाइट्स की चमक ही याद दिला पाती थी कि यह बम्बई है। अथवा श्मशान ऐसा ही मूर्तिमान होता है, यह कल्पना होने लगती।

वहीं फुटपाथ पर भूत की तरह हम दोनों बैठ गये।

कुछ दम लेकर धीरे-धीरे हमने सड़क पार की। नीला का घर आ गया। बूढ़े को मन ही मन कोटिशः धन्यवाद देकर मैंने विदा ली। धीरे-धीरे ऊपर चढ़ गया। नीला को सामने पाने की कल्पना में, उस शरणागत का कुछ स्वागत करना चाहिए, यह याद ही नहीं आया। बिना कुछ कहे वह चला गया।

नीला के कमरे में रोशनी जल रही थी। लगा कि जैसे कोई पुरुष अट्टहास कर रहा हो। नीला के कमरे की यह अनजानी आवाज रात्रि के इस गहरे वातावरण को भेद कर मेरे चारों ओर लिपट गयी।

लज्जा की एक ही बात माथे में भिन्नाने लगी। ओह, नीला! किसी के साथ रंगरेलियां मनाती हुई घृणित, कुत्सित-कर्म में लिप्त!

शत-शत अभिशाप बरसाता हुआ नीचे उतर आया, 'नीच, कृतघ्न, पापी!'

सीढ़ियों की रेलिंग मजबूती से पकड़े हुए था। फिर भी उत्तेजितावस्था में सतुलन नहीं रख सका, और फिसलते कदमों के साथ लुढ़कता हुआ नीचे गिर पड़ा। भग्न, बुखार और कमजोरी पर यह मानसिक आघात सहा नहीं गया। नहीं सभाल सका।

सिर में लगी चोट से खून निकल आया। यह खून इसी तरह व्यर्थ ही बह जाने के लिए है? सोचकर करुण हो आया। पर अब नीला कृपा करके उठा ले जाय, ऐसी दया बर्दाश्त करने में असमर्थ था। एक ओर हो गया।

किसी के आनेकी आवाज आयी, पूछा, कौन है?

कोई उत्तर नहीं दिया। जब्त किये रहा।

भोर होने पर सड़क पार कर, समुद्र के किनारे की फुटपाथ पर आकर बैठ गया। स्वास्थ्य के प्रति अत्यधिक जागरूक बहुत सुबह घूमने आने वाले,

लोग नगण्य मात्रा मे टहलने लगे थे। बुखार के मारे सुलग रहा था। सिर दर्द के मारे फटा जा रहा था।

वर्षगाँठ के उपलक्ष में प्राप्त कुर्ता अभी तक हाथ मे थामे हुए था। उसे ओढ लिया, कि यही अंतिम कफ़न हो जाय। जीवन इसी सीमा पर समाप्त हो जाय। अब पाने लायक कहीं कुछ भी नहीं रहा।

लेकिन उस दिन भी मर नहीं सका।

जीने की तमन्ना जाने कैसे फिर सिर उठाकर खड़ी हो गयी। बारम्बार नीला की बात याद आती, कि जीना तो होगा ही। यही ईमानदारी है। यही सच्चाई है। जिसने यह दृष्टिदान दिया, उसके प्रति गद्दारी करूं, ऐसी लज्जाजनक बात कैसे सोचू?

दो-एक पुरुष और तीन-चार महिलाएं पास से गुजरीं। मैंने भर्राये हुए कंठ से पूछा, 'आप धनवान है?'

उन्हें प्रश्न शायद कुछ अजीब-सा लगा। रुक कर, ठिठक कर, कुछ आश्चर्य के साथ उन्होंने पूछा, क्यों?

–यह कुर्ता खरीद लो, भाई।

एक लम्बे मगर दुबले-से आदमी ने टार्च जला कर गौर से मेरी ओर देखा। जाने क्यो उसने मुझे भिखमंगा नहीं समझा। बल्कि कुर्ता हाथ में लेकर पूछा, कितने पैसे लोगे?

भाव मालूम नहीं थे। एक रुपया मांगा।

–बहुत ज्यादा है।

–तो कुछ भी दे दीजिये।

उसके साथी पास आ गये। वह उनसे कहने लगा, एक क्लासिक कहानी का प्लाट है! जीता जागता मोडेल! यह है आपका गणतंत्रात्मक हिन्दुस्तान!

मोडेल शब्द को सुनकर चमत्कृत-सा हुआ। जानता हू, जो इसका अर्थ समझते है उनके लिए मैं इतना सस्ता नहीं हूं। चिल्ला कर बोला, मैं मोडेल नहीं हू। यदि हूं भी तो बहुत महगा!

शायद वह कोई लेखक होगा। मेरी बात सुनकर कुछ अप्रतिभ-सा हुआ। कुछ दिलचस्पी हुई। पूछा, 'यह चोरी की तो नहीं?'

नर्मों में तनाव आ गया। घावों की पीड़ा भूलकर उत्तेजित होकर बैठ गया। कहा, 'चोरी की नहीं, ईमानदारी की है। चोरी कर सकता, तो यहाँ, इस तरह से नहीं पड़ा होता! चोरी कर सकता तो !

विश्वास उखड़ गया। अधिक बोल नहीं सका। मुझे ठंडा होते देख कर वह हंसा। एक रुपये का नोट उसने मेरी ओर फेंक दिया।

हवा के झोंके के साथ नोट उड़ने लगा।

वे उसके पीछे भागे। उनके साथी मेरे पास ही दयार्द्र आंखों से देखते खड़े रहे। दूसरे ने पूछा, 'भले घर के आदमी लगते हो। कहां रहते हो? कुछ पढ़े-लिखे भी तो मालूम देते हो। कोई काम-धाम क्यों नहीं करते?'

–काम तो करता ही हूं। बीमार हूं। होता नहीं।

–इलाज करवा लो।

–करवाऊंगा।

तभी एक महिला ने कहा, इसे किसी अस्पताल में क्यों नहीं पहुंचा देते?

'नहीं जी', पुरुष ने उत्तर दिया 'ख्वामख्वाह दिक्कत होगी। कोई ऐसा-वैसा आदमी हुआ, तो पुलिस से माथा-पच्ची और करनी पड़ेगी। तुम्हारी तो आदत ही ऐसी है, गो कि मालूम है कि हवन करते हाथ जल जाया करते हैं।

जो जीना चाहते हैं, उन्हें दूसरों के सशक्त हाथों के सहारे को स्वीकार करना ही होता है। करुण स्वर में निवेदन किया, 'मुझे हास्पीटल पहुंचा दीजिये। मैं जीना चाहता हूं। इस तरह व्यर्थ ही मरना नहीं चाहता।'

जो हो। उस भद्र महिला के आग्रह का फिर किसी ने अधिक प्रतिवाद नहीं किया। एक ने पास से जाती हुई टैक्सी रोकी। मुझे सहारा देकर उसमें बिठा दिया। टैक्सीवाले ने इतने सारे आदमियों को बैठाने में एतराज तो किया, लेकिन मरीज को देखकर शायद उसे भी दया आ गयी।

टैक्सी में बैठा, तो सबकी जिज्ञासा का जवाब देना पड़ा। बताया, आर्टिस्ट हूं। घर जा रहा था, मगर बुखार के कारण चल नहीं सकता। घर में कोई नहीं है, किसी के यहां पेइंग-गेस्ट हूं। आप अस्पताल पहुंचा देंगे, इस कृपा के लिए कृतज्ञ हूं। स्वस्थ्य हो गया, और जिन्दा रहा तो आपके एहसान को भूलूंगा नहीं।

अस्पताल के दरवाजे पर जाकर टैक्सी रुकी। एडमिशन हो गया।

अस्पताल की कोई बात इससे अधिक उल्लेखनीय नहीं कि वहां कुछ ही दिनों में ठीक हो गया। एक कम्पाउण्डर से जान-पहचान हुई। उसे परिचय के सिलसिले में जोगलेकर का नाम बता चुका था। फोन करके उसने तस्दीक कर ली। मेरा नाम बताने पर आश्वासन भी मिल गया कि जो खर्च होगा, वे चुका देंगे। अन्नपूर्णा के हाल पूछने पर मालूम हुआ कि वे यहा नहीं है। पूना चली गयीं हैं।

घाव ठीक हो गये; लेकिन बुखार ने पिंड नहीं छोड़ा।

एक दिन देखा, नीला किसी मरीज के लिए खाना लायी थी। खुद को उसकी नजरों से छिपाना चाहता था, सो कम्बल ओढकर लेट गया। उसने देखा नहीं। अच्छा ही हुआ। दो दिनों बाद वह फिर आयी। इस तरह कब तक बच सकूंगा, इस चिन्ता के मारे एक दिन विना किसी से कुछ कहे, अस्पताल से निकल कर बाहर चला आया।

जैसे मुक्ति मिली।

दुनिया बहुत बड़ी है, लेकिन मैं कहां जाऊं? कौन है मेरा, कि जिसके प्रति, पल-भर के लिए भी विरक्त न हो सकूं!

अनजाने में ही धीरे-धीरे मृणाल के यहा पहुच गया। वह घर में नहीं थी। स्कूल गयी थी। सोना ने बड़े प्यार और उलाहने के साथ स्वागत किया। मेरे स्वास्थ्य को देखकर आश्चर्य और दुख प्रकट किया। पूछा 'जीजी को फोन करके बुला लूं!

—बड़ी कृपा होगी। खड़ा नहीं रह सकता। बैठना चाहता हू।

मेरा हाथ पकड़कर, सहारा देकर अपने कमरे में ले गयी, एक आरामकुर्सी पर मुझे बिठा दिया।

सोना ने मृणाल को फोन किया। लेने के लिए कार भेज दी। माँ को सूचित किया, वे भी आयीं। उन्हें इतना ही बताया, कि बहुत दिनों से बुखार है, कमजोरी आ गयी है।

आयुर्वेद की प्रशंसा में एलोपैथी की निन्दा करती हुई, उन्होंने कई अनुभूत औषधिया बता दीं। कहा, उनका ही सेवन करे। कुछ दवाइयां भिजवा भी दीं।

थोड़ी देर में मृणाल आ गयी। चेहरे पर चिन्ता थी। पिछले दिनों में जैसे सूख गयी हो। व्यग्रता से पूछा, 'इतने दिन कहां थे राम ?'

–बीमार था ?

–कब से ? क्या हुआ ?

–बुखार था। ठंड लग गयी, इसलिए शायद टायफाइड हो गया। अब ठीक हू।

–आओ।

उठकर उसके साथ कंधे का सहारा लेकर, उसके कमरे में चला गया।

पूछा, मुझे खबर दे देते, तो पाप हो जाता ?

दे नहीं सका। मजबूर था। पुलिस की हिरासत में अन्य चाहे जितनी सुविधाए हों, टेलीफोन करने की सुविधा नहीं।

–वह चौंकी, सावधान हुई, बात काट कर पूछा, पुलिस ?

–हां मृणाल! इतनी मार पड़ी कि घाव हो गये। वहा से लौटने पर चौपाटी की सर्द हवा में बैठा रहा, इसलिए बुखार हो आया। किन्हीं देवदूतों की कृपा से अस्पताल पहुचा दिया गया। वहां जी नहीं लगा, तो 'कहां जाऊं', यह सोचकर तुम्हारे पास चले आने के सिवाय कोई मार्ग नहीं दिखायी दिया। सो यहीं चला आया।

–पुलिस ने क्यों पकड़ा ? नीला के यहा नहीं गये थे ?

–नहीं मृणाल, वहा नहीं जा सका। अब कभी जा सकूंगा, यह भी नहीं जानता।

मेरे सामने कुर्सी खींचकर बैठती हुई बोली, साफ-साफ कहो न, क्या हुआ था ?

–कुछ नहीं। शराब से सम्बन्धित एक अपराध के सिलसिले में पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था। मा–अन्नपूर्णा को तुम जानती हो ? शायद नहीं जानती ? उनके पति की कृपा से छूट आया। लेकिन ! जो हो, मृणाल। इस समय दूसरों की दया और कृपा पाने के बजाय तुम्हारी सहायता मेरे लिए अधिक उपयोगी हो सकेगी। मैं जीना चाहता हूं। पर नीला और दुनिया के तमाम लोग मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र रच कर चाहते हैं कि मैं मर जाऊं। पर मैं मरना नहीं

चाहता, जीना चाहता हूं। इसलिए, यह सोच कर, कि तुम्हारे सामने मुझे लज्जित नहीं होना होगा, यहां चला आया।

सोना चली आयी। पलंग पर बैठी वह मेरी बात सुन रही थी। मृणाल मेरी बात मे अप्रतिभ-सी व्यस्त बैठी रही।

सोना ने कहा, आपकी तबीयत अभी तक ठीक नहीं है। बात अधिक मत कीजिये, थोड़ा आराम कर लो। जीजी कहो तो, इनके लिए ऊपर का गेस्ट-रूम खाली करवा दूं?

सोना ने गभीरता मे पूछा, तुम शराब पीते हो?

अभियोग अस्पष्ट नहीं था। शिकायत अचंचल थी। आरोप गंभीर। चोट-सी लगी। चौंका। अस्थिर, कातर-दृष्टि मे मृणाल की ओर देखकर बोला, 'यदि 'हां' कहूं, तो घृणा करने लगोगी तुम मुझसे! मृणाल, तुम सबके ममतामय ऐश्वर्य को अभी तक भूला नहीं हूं। यह जो आज तक सब कुछ सुन्दर दिखायी दे रहा था, सिर्फ नाटक ही था, मिथ्या! भ्रम मात्र?'

–घृणा तो नहीं करूंगी। लेकिन आश्रय यहां है, यह भी नहीं कह सकूंगी।

–'जीजी', सोना धीरे से बीच में बोली।

–गरीब और अनाथ होकर भी जो नशे की मौज उड़ाते हैं—मृणाल ने कहा, 'वे दया के पात्र नहीं हो सकते। हो सकते है, तो इतने ही, कि उनका अनावश्यक अपमान नहीं किया जाय।'

विरक्त-सी मृणाल उठ कर बाहर चली गयी।

मैं स्तब्ध-सा सोना की ओर देखता रहा। कहा, सोना, इन कुछ ही दिनों मे सब कुछ इतना बदल जायगा, ऐसा नहीं सोचा था। मृणाल को दुख देकर, उसकी इच्छा के विरुद्ध अब यहां नहीं ठहरूंगा। चलता हूं।

वह चुप रही। सोच कर पूछा, कहां जाओगे?

–यह तो नहीं जानता। पर कोई तो जगह होगी, मेरे लिए भी! कहीं न कहीं, कोई न कोई आश्रय निश्चित रूप से होगा, सोना। अभी तक इतना अधिक निराशावादी नहीं हुआ हूं। जो मंजूर नहीं, उसे इसीलिए तो छोड़ता चला जा रहा हूं।

–नहीं, नहीं। सुनो राम। जीजी कोई सच कह रही है! तुम नहीं जान सकोगे, जीजी ने ऐसा कह कर अपने साथ कितना छल किया है। तुम्हारे प्रति इतना लगाव न होता, तो फोन करते ही भागी-भागी आती?

–इतना ही बहुत है सोना। इससे अधिक के लिए स्थान नहीं रह गया है।

–तुम तो राम, बिलकुल शिशु हो। समझते क्यों नहीं? सुनो, उस दिन जीजी ने जो कुछ कहा था, तुमने 'ना' कह कर प्रत्युत्तर में सिर हिला दिया। तब क्यों नहीं मान लेते, कि यह भी उतना ही व्यावहारिक-सा है कि एक क्वांरी लड़की किसी से अधिक हेल-मेल न रखे। जिससे कि । आखिर दुनिया है, समाज है, मां है, भैया है। सबके प्रति उसे तो सफाई देनी है न? समझ रहे हो?

–समझ रहा हूं, सोना। खूब समझ रहा हूं। अभी तक होश में हूं। यह सारा प्रेम इस परिणाम के इर्द-गिर्द ही था, तो यह कितना अस्थायी है? समझ सकता हूं। अच्छा हुआ, यह नाटक आज ही समाप्त हो गया। अन्यथा बाद में जीना दूभर हो जाता।

मैं उठ खड़ा हुआ। जाते-जाते कह गया, 'यदि ऐसा ही है सोना, तो मां-अन्नपूर्णा और मृणाल में क्या अन्तर रहा, बताओ तो? उन्होंने अपने बचाव के लिए, अपने पति के बचाव के लिए, जिसे पुत्र कह कर छाती से लगाया था, उसी निर्दोष को अपराधी साबित करवा दिया। मार खिलायी। बेगुनाह को मार! महात्मा ईसा ने भी तब श्राप के कहर गिराये थे। मैं उतना बड़ा नहीं। लेकिन यह मान कर सह गया कि प्रेम को सारे अधिकार हैं। प्रेम की सतह चाहे जो हो, मेरा पार्ट इतना ही था। इसे स्वीकार कर लेना अधिक ईमानदारी है सोना, कि अधिक ऋण-परिशोध की सामर्थ्य अब मेरी नहीं है। मृणाल के स्वार्थ को पूरा कर, दंड भोगने की शक्ति अब नहीं रही।'

–मेरी मानो राम। कुछ देर आराम करके, चित्त शांत हो जाय, तो चले जाना। मैं पहुंचा दूंगी। जो इन्तजाम कर सकी, करूंगी। दो कदम रख कर तुम खड़े हो सको, इतना कर दूंगी।

खड़ा अधिक नहीं रहा गया। सोना की बात सुनने के लिए ठहरा था, बैठ गया।

–पूछ तो बताओगे? दंड और अपराध की तुम्हारी सारी बात। अन्नपूर्णा-मां और वहां की घटना की बात? क्या हुआ था?

–किसी से बताने की जरूरत नहीं रही सोना। लेकिन तुम्हें इसलिए कहना चाहता हूं, कि इस मफाई में तुम्हारी दिलजोई का कोई सम्बन्ध नहीं; और मुझे तसल्ली हो जायगी, कि अपने सामने अस्पष्ट रहने का अपराध मैंने नहीं किया। मगर किसी के पास मेरी बात सुनने के लिए अवकाश न हो तो मैं कैसे

प्रायश्चित करूं ? तुम अपराध और अपराधी दोनों को देख सकोगी । अपराधी नहीं हूं, यह तो ठीक से नहीं जानता । लेकिन जो हो चुका है, उस अपराध ने सारे भविष्य पर जो कोहरा डाल दिया है, उस दंड से जरूर डर गया हूं । अन्नपूर्णा–मा कहती थीं, कि उनके मृत-पुत्र से मेरा चेहरा हू-ब-हू मिलता है। उनका असीम प्यार था, मेरे लिए । मेरी सहायता उन्होंने की । प्रदर्शनी का इन्तजाम किया । उनके प्रताप और आशीर्वाद को किसी भी घटना के कारण गौण नहीं कहता । लेकिन हुआ यह, कि उनके पति महोदय घर में शराब पी रहे थे । वे पुलिस अधिकारी हैं । इसलिए अपराध बड़ा था । खास कर इसलिए कि उनसे भी बड़े कोई अधिकारी वहां पहुच गये और उन्होंने भरी बोतलों को देख लिया । जोगलेकर ने बताया कि यह सब मैं यहां लाया हूं । यह सब मेरा काम है । अपने आफिसर के सामने इस तरह से वे कर्तव्य परायण प्रमाणित हो गये । मां-अन्नपूर्णा ने कसम दिला कर मुझसे कहा, इसे मंजूर कर लेना । मैंने आदेश का पालन किया । परिणाम यह हुआ !

बांह खोल कर बेंतों के कच्चे घाव बता कर कहा, 'अभी तक ताजे हैं ।'

कहता ही चला गया, 'पिछले दिनों मैं सोचने लगा था, दुनिया बहुत खबसूरत है। बहुत सुन्दर । जिस ओर नजर डालता हूं, प्यार बरसता चला आ रहा है ! लेकिन देखता हू, इस प्यार में सर्वत्र दुर्गन्ध है । आडम्बर है । तुच्छ स्वार्थ है ! इसीलिए तो अब वितृष्णा हो गयी है । विरक्ति हो गयी है ।

–ऐसी थीं तुम्हारी मा–अन्नपूर्णा ?

–उनके बारे में निन्दा की बात मत करना सोना । उन्हीं की कृपा से तो जेल से छूटा । उन्होंने जो कुछ किया, अपने अधिकार के बल पर ही किया । मुझे योग्य पात्र समझ कर बलिदान कर दिया । लेकिन नीला ने ..ओह !

–नीला ने ? उसने क्या किया ? वहां क्यों नहीं गये ?

–बस यही मत पूछो । मर कर भी सारी बात बता नहीं सकूंगा ।

वह ध्यानपूर्वक सुनती रही । धीरे से बोली:—'उठो राम, मैं तुम्हें पहुंचा आती हूं । तुमने जो कुछ किया, अच्छा ही किया । तुम जैसा आदमी जीजी के लायक नहीं है । शायद जीजी को इतनी बड़ी चीज चाहिए भी नहीं । तुम्हें जो चाहिए, वह यहां नहीं है । इसी ध्यान को लेकर किसी दिन तुम गौरवशाली हो सकोगे ।'

–सोना तुम ?

–मैं भी नहीं राम। मैं भी नहीं। चलो उठो। तुम्हारे लिए आराम का प्रबन्ध किये देती हूं। आओ।

सोना का सहारा लेकर उठ खड़ा हुआ। नीचे कार खड़ी थी। दरवाजा खोल दिया। कहा, बैठो।

वह खुद ड्राइव कर रही थी।

चलती कार से पीछे छूटने वाली आलीशान इमारत की ओर देखा। आज तक यहां मेरी उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा की जाती थी। आज के बाद से यहां मेरी स्मृति भी नहीं रह जायगी। किसी तरह का कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।

ऊपर की खिड़की से मृणाल ने झांका। नजरें मिलीं। मैंने सिर झुका लिया। वह अदृश्य हो गयी।

सोना ने गीयर बदला। कार पार्क का चक्कर काट कर आगे बढ़ गयी।

बारह :

सोना ने मेरे लिए एक होटल का साफ-सुथरा कमरा पसन्द किया। मन और शरीर की थकान से हारा हुआ, जाते ही पलंग पर लेट गया। आंखें मूंद लीं।

सोना ने मैनेजर से मिलकर सारी बातचीत की।

आकर मुझसे कहा, एक महीने का पूरा इन्तजाम कर आयी हूं। किसी तरह की तकलीफ नहीं होगी। आवश्यकता हो तो मुझे फोन करना। जहां भी और जैसी भी होऊंगी, चली आऊंगी। कसम खाकर कहो, संकोच नहीं करोगे।

विश्वास दिलाया, नहीं करूंगा।

मेरे ललाट पर हाथ रखकर कहने लगी, अभी भी बुखार है। कुछ दिन तक पूरी तरह से आराम करना। शाम को डाक्टर आयेगा। पास में कोई न

हो तो दवाओं के साथ अन्याय मत करना। किसी के बारे में कुछ भी मत सोचना। आखिरी बात यह कि ठीक होते ही खुद को स्टेब्लिश करने की कोशिश करना।

सोना के उन उपदेशों में अपनी बात मनवाने के बनिस्पत मेरी आवश्यकताओं के प्रति सतर्कता और चिन्ता ही अधिक थी। यह शायद इसलिए लगा हो कि मैं भी ठीक यही सोच रहा था। प्रार्थना की:—'कभी-कभी समय निकाल कर आना। सुध लेती रहना।'

–आऊंगी। आऊंगी क्यों नहीं ?

–एक बात पूछूं सोना ? बुरा मत मानना। एक दिन ऐसा ही कड़वा-सा सवाल मैंने अन्नपूर्णा-माँ से भी पूछा था। लेकिन प्रत्युत्तर पाकर दुखी नहीं हुआ। इसलिए कि अपनी ठीक सीमा और सही स्थिति जान गया।

–कहो।

–सच बताना सोना। तुम्हारी इतनी कृपा और ममता इस अभागे पर क्यों है ? मेरे भाग्य का इतना जोर तो हो नहीं सकता।

–जो अपने इतिहास को दुहराना नहीं चाहता, राम। उसे दुख देकर पूछना भी नहीं चाहिए।

–'नहीं' कहोगी, तो नहीं पूछूंगा।

–सुनो। बताऊंगी। तुम हंसी नहीं उड़ाओगे, यह जानती हूं।

स्थिर-दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई बोली:—'सच राम, तुमसे बहुत दूर हूं मैं। फिर भी तुम्हें कष्ट में देखती हूं, तो दुख होता है। तुम कारण जानना चाहते हो, इसलिए मोटे रूप से जो जानती हू, वही कहूंगी।

'आज उस बात को आठ महीने से अधिक नहीं हुए होंगे। ओह, किस तरह यह अर्सा चुपचाप गुजर गया! मेरे एक मित्र थे। कुणाल बंद्योपाध्याय। बंगाली थे। डाक्टर। सोचते थे, हम एक दूसरे के लिए ही हैं। विवाह हो जाय, इसके लिए किसी की असहमति नहीं थी। असाधारण होने का दावा मेरा कभी नहीं था। इसलिए सीधी तरह से ब्याह कर लेना चाहती थी। वे तैयार हो गये। लेकिन जाने क्यों, उनके परिवार वालों ने इजाजत नहीं दी।

'इसी बीच एक दुर्घटना के कारण उनका सिर फूट गया।'

कहते कहते सोना की आखें छलछला आयीं।

'उन्हें किसी छोटी अस्पताल में भर्ती कर दिया गया। एक्स-रे मशीन तक वहां नहीं थी। अन्त तक डाक्टर अनुमान नहीं लगा सका कि खतरनाक

हैमरेज है। साधारण घाव मान कर ही उपचार होता रहा। खबर मिलते ही दौड़ी-दौड़ी मैं वहां गयी। रक्त काफी निकल चुका था। तुरन्त जे० जे० हास्पीटल ले गये। डाक्टर ने बताया, ताजे खून की जरूरत है। मैंने अपना खून लेने की प्रार्थना की। उन्होंने मेरा रक्त ले लिया। प्रतिकूल नहीं था। लेकिन जब 'वे' जरा होश में आये, तो उन्होंने मेरा खून लेने से इनकार कर दिया। कहने लगे, 'अभी तक तुम्हारे खून पर मेरा अधिकार नहीं हो सका है, सोना।'

'मैं रोती रही। क्या कहती ? वे फिर बेहोश हो गये, और बाद में कभी होश में नहीं आ सके। किसी की मौत अधिक चिन्तनीय नहीं होती, राम। लेकिन किसी अपने की मौत बड़ी दुखदायी होती है, यह उस दिन ही जाना। जीवन में गहरी दिलचस्पी लेने का मैंने अभ्यास किया है। इसलिए उस दुख को भूल जाना चाहती हूं। कभी-कभी लगता है, भूल गयी हूं। लेकिन जब कभी देखती हूं किसी को अपने अहंकार में दुख पाते, तो रहा नहीं जाता। मृणाल याद आ जाते हैं। इतनी ही बात है।'

-अब चलूंगी।

मेरे किसी उत्तर को सुने बिना, आंचल में मुंह छिपा कर वह चली गयी।

यह सोना है! इस रूप में कभी जाना नहीं था। एक की मृत्यु के कारण हर व्यक्ति के प्रति उसके मन में उतनी ही करुणा है, उतना ही निष्फल समर्पण! हे प्रभो, ऐसे लोग इसी दुनिया में रहते कैसे हैं ?

सोना के प्रबन्ध के अनुसार सन्ध्या के समय डाक्टर हाजिर हो गया। दवा लिख कर दे गया। प्रिस्क्रिप्शन्स लेकर होटल का चपरासी जाकर दवाएं ले आया। हिदायत के अनुसार पी लीं। दो-एक दिनों में बुखार कम हो गया। नयी जिन्दगी और नये उत्साह के साथ स्वस्थ होकर मैं उठ खड़ा हुआ।

निश्चय किया, कि अब किसी से, किसी तरह का अपेक्षात्मक सम्बन्ध नहीं रखूंगा। एक अच्छे भले नागरिक की तरह कोशिश करूंगा, कि अधिक कमा सकूं। अच्छे स्तर से रह सकूं। जिसे लोग 'सुख' कहते हैं, भोग सकूं।

ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा की व्यर्थता का बोध भी होने लगा। सोचता, क्यों न पत्नी आये, क्यों न बच्चे हों ? क्यों न आदमी अपने संक्षिप्त घेरे का

संतोष प्राप्त कर, जीवन-यात्रा समाप्त कर दे ? दुनिया में हजारों लोग ऐसा ही तो करते हैं: वे कोई अपराध नहीं करते। बल्कि यही व्यवस्था है, यही परम्परा है। इसलिए यह अनुचित भी नहीं। इसी से किसी की सेवा होती हो, तो हो। न हो पाती हो, तो मैं ही क्यों अपने को शहीद करूं ?

पड़ोस में रहने वाले एक महाशय से इन्हीं दिनों परिचय हुआ। किसी फैक्ट्री के कैन्टीन-मैनेजर थे। बड़े दिलचस्प आदमी। औरतों के बारे में उनका ज्ञान इतना प्रशस्त; कि लगातार तीन दिन तक इसी विषय पर लेक्चर दे सकें। उन्हीं के यहां एक दिन अमरीका के कार्टूनिस्टों का इतिहास देखा। कार्टूनों का संग्रह था। इस कला की प्रशस्ति और मूल्यांकन भी। मन लगा कर पढ़ गया। उक्त पुस्तक अमरीका के भारत स्थित दूतावास की ओर से संचालित यू०एस०आई०एस० लायब्रेरी की थी। यह संस्था मुफ्त में पढ़ने के लिए पुस्तकें देती है। अमरीका के विषय में भारतवासी अधिक से अधिक जान जायं, यही इसका लक्ष्य है। इसलिए भारत-वासी उन पुस्तकों का सही उपयोग करते ही है। उदाहरण के लिए मेरे उक्त मित्र महोदय ने यह मान कर, कि इस पुस्तक में मेरी दिलचस्पी है, मुझे भेंट कर दी। उनका ऐसा कहना था, कि न लौटाने पर भी अमरीका की बहुत बड़ी हानि नहीं होगी। वे तो सब परोपकारी हैं। सब को कर्ज देने वाले! शर्त भी कितनी सरल और सुनहली है 'पेयेबल, व्हेनेवल' जब होगा, तब दे देंगे!

खैर, यू०एस०आई०एस० और अपने मित्र दोनों के प्रति मैं कृतज्ञ ही हुआ।

सोचा, कार्टूनिस्ट बन कर अपने आप को स्टेब्लिश कर सकूंगा। इस तरह से समाज तथा राष्ट्र की सेवा भी कर लूंगा। सो कार्टूनिस्ट बनने का निश्चय किया। अधिक कठिन नहीं था। पैसा मिलेगा, यह उम्मीद हुई। यहां विशाल क्षेत्र है, इसका ज्ञान भी हुआ।

लेकिन आज तक राजनीति से इस गरीब का कोई सम्बन्ध नहीं रहा। हान-परिहान क्या होता है यह भी कभी नहीं जाना। बिना इन दोनों चीजों के कार्टूनों का बाजार में क्या मोल होगा, यह जानकर कुछ हतोत्साहित-सा हुआ। लेकिन आदत के अनुसार पिल पड़ा तो दिन भर सम्पादकीय लेख, अन्य सामयिक लेखों, समाचारों और कार्टूनों को ध्यानपूर्वक पढ़ गया। पांच-सात कार्टून बनाये। पहला प्रयास था। शायद बहुत अच्छे न बन पाये हों। लेकिन

बुरे भी नहीं थे। ऐसे तो ये ही कि पांच-सात कार्टूनों के बीच रख दिये जाय, तो छिप जाय।

पिछले दिनों एक बार सोना आयी थी। मेरे लिए अपनी पसन्द के कपड़े सिला लायी। सम्भवत अपने प्रेमी के प्रति मेरे माध्यम द्वारा यह श्रद्धांजलि थी। एक ऊनी स्वेटर भी था, हाथ का बुना हुआ।

कह रही थी कि पिछले हफ्ते वह बहुत व्यस्त रही। सोचा, कि स्वेटर बुनने को उसे समय कहा मिला होगा? विचार आया कि मृणाल की भेंट तो नहीं? लेकिन इस सोचने का कोई आधार नहीं था। चाहती तो मानवीय सम्बन्धों का हवाला देकर, फोन से मेरे स्वास्थ्य के हाल तो पूछ ही सकती थी। इससे उसकी मर्यादा कम नहीं हो जाती। खैर।

सोना जब तक मेरे पास बैठी रही, अपने कुणाल के बारे में ही बातें करती रही। वह कैसा था, उसे कैसे कपड़े पसन्द थे, वह किस तरह भोजन करता। भोजन में उसे क्या-क्या पसन्द था। उसके साथ वह कहा-कहां घूमने गयी थी। उस समय वे आपस में क्या बातचीत किया करते थे। कहते कहते वह कभी शर्माती, कभी रोती, कभी प्रसन्न होती। जैसे स्वप्न में खो जाती।

कुल मिला कर यही—कुणाल अद्वितीय था। असाधारण था। मैं उसकी मित्रता को, सोनाकी कृपा को समझने की कोशिश करता। किसी भी ऍंगल से उसकी आलोचना न हो जाय, इसका ध्यान रखता।

उस दिन मैंने पूछा, 'सोना, यदि कार्टूनिस्ट बन जाऊ, तो कैसा रहे? देखो ये कार्टून बनाये है। तुम्हें पसन्द आ गये, तो समझ लूगा—समर्थ हू।

प्रसन्न होकर कहने लगी, बहुत अच्छे है! देश की सेवा होगी। अपनी भी।

उस दिन हमने साथ ही खाना खाया। उसने पूछा, नीला के बारे में कुछ मालूम हुआ? क्या हाल हैं उसके?

-नहीं जानता। जानना चाहता भी नहीं। अब सारे व्यतीत को भूल कर भावी बनाना चाहता हू।

शायद वह कुछ कहना चाहती थी। चुप हो गयी।

सोना अनजाने मे ही अभिभावक हो गयी थी। स्वीकृति की मोहर मेरी ओर से लग गया।

प्रयत्नों के प्रति मेरी निष्ठा जागी। दूसरे दिन कार्टूनों का बंडल थामे एक अखबार के दफ्तर में पहुचा। प्रधान सम्पादक कोई अंग्रेज थे। भले आदमी। कार्टून उन्हें पसन्द आये। अगले रविवारीय अङ्क में छापेंगे, ऐसा आश्वासन मिला। कुछ पैसे भी मिलेंगे—यह भी बताया। साथ ही उन्होने अफसोस प्रकट करते हुए कहा, 'वे नियामित रूप से मेरी सेवाओं को फिलहाल इसलिए नहीं ले सकेंगे, कि उनका अपना स्टाफ-कार्टूनिस्ट है।' मेरी मदद करने के लिहाज से उन्होंने अन्य अखबारों के कुछ पते और उनके सम्पादकों के नाम पत्र लिख दिये कि उनसे मिलूं, तो शायद कोई अवसर मिल जाय।

मेरे लिए इतनी आशा भी काफी से अधिक थी। उनका अधिक समय बर्बाद नहीं किया। अभिवादन करके चला आया। शेष कार्टून देने के लिए किसी दूसरे अखबार का दरवाजा नहीं खटखटाया।

पहला कार्टून इस तरह प्रकाशित हुआ। लोगों ने पसन्द किया है, ऐसा प्रधान सम्पादक महोदय ने ही बताया था। पूछा, कहीं और गया या नहीं?

मैंने कहा, जा नहीं सका। संकोच-सा होता है। आपके यहा ये छप तो रहे ही हैं। किसी को पसन्द आये तो शायद कोई बुला ले।

-संकोच से कोई काम चलता है? मेरी चिठ्ठियां लेकर मिलना। मैंने फोन पर बात भी की है। शायद तुम्हें अच्छा काम मिल जाय।

चिठ्ठियां ले लीं।

दूसरे दिन सुबह उठते ही कागज पेंसिल और कूची संभाली। चार कार्टून बनाये। दूसरे समाचार पत्र के दरबार में हाजिर हुआ। सम्पादक महोदय ने कार्टून पसन्द किये। लेकिन आर्थिक-हीनता का लम्बा-चौड़ा इतिहास बताने के बाद इस निष्कर्ष पर आये कि तीन रुपये प्रति कार्टून पुरस्कार देने की अभी तक उनकी सामर्थ्य है। मैंने यही मंजूर कर लिया। बिना इतनी भूमिका के भी स्वीकार कर सकता था। निश्चय यह हुआ कि नियमपूर्वक उन्हें कार्टून दे जाया करूंगा। महीने के अन्त में हिसाब हो जायगा।

एक और सम्पादक महोदय से मिला। कुछ डिजाइनिंग का काम मिल गया। सन्तुष्ट होकर आ गया।

सफलता की सूचना सोना को देना चाहता था। फोन किया। मृणाल थी। नाम पूछा, बता दिया। कहने लगी, सोना तो नहीं है। मृणाल हू।

हड़बड़ाहट में मैंने इतना ही कहा, नमस्कार।

और फोन रख दिया।

तीन पत्रों के कण्ट्राक्टस् के पश्चात इतना समय नहीं रह गया कि आकाश की ओर मुह किये पडा-पडा सोचता रह सकूं। स्वाभाविक रूप से सोना, मृणाल, नीला सबको धीरे-धीरे भूल सा गया।

पैसे मिले। शोहरत भी मिली।

सोना आती, तो उसके सामने इन दोनों चीजों का जिक्र करता। अब वह अपने कुणाल के बारे में कुछ कह नहीं पाती। शायद सोचती, कि कुणाल होता, तो इसी तरह बात करता।

इसी बीच एक प्रसिद्ध अंग्रेजी अखबार के सम्पादक से मैंने शहर में होने वाले विभिन्न उत्सवों के 'एट द स्पाट-कैरिकेचर' बनाने के विषय में बात की। भारतीय पत्रकारिता में यह नूतन प्रयोग था। उन्होंने स्वीकार कर लिया। खुश भी हुए। मन को उलझाने का एक और मौका मिल गया। दिन भर सांस्कृतिक-उत्थान के लिए किये जा रहे अनेकानेक महोत्सवों में बैठा स्कैचेज बनाया करता। नेताओं की उन चिन्ताओं को सुनता, जो वे देश के नागरिकों के बारे में किया करते हैं। फोटोग्राफ्स की तरह उनके स्कैचेज उसी समय बनाता। दौड कर अखबार में दे आता। जहा फोटो के ब्लाक बनाने का समय भी नहीं रहता, वहा सजीव स्केचेज तैयार हो जाते। जहा भी उपस्थित होता, वहा के लोग मेरी ओर देखकर अधिक सजग हो जाते, अटेन्शन में हो जाते। यह सब अच्छा ही तो लगता। अपने इस काम के पीछे इतना पागल हो गया कि रात दिन इसी मे व्यस्त रहता। न खाने का पता, न सोने का। न नहाने का, न घर जाने का।

दिन प्रतिदिन होने वाली घटनाओं को मद्द-नजर रखने के लिए अखबार पढने पडते। दूसरों के कार्टून देखता। अपने कार्टूनों से तुलना करता। हीनता महसूस होती, तो दूने उत्साह से फिर काम में लग जाता।

कभी सोचता, नीला ठीक ही कहती थी, राष्ट्र-पुत्र, युग-नायकों की श्रेणी में बैठने लायक इसी तरह एक दिन हो सकूंगा। जो कहना चाहता हू, उसे सशक्त स्वर में कह सकता हू। कहला भी सकता हू। यह शक्ति कम नहीं। काश! नीला यह समाचार सुन ले। एक बार खुद को देखकर वह शर्म से झुक जाय। तब मैं उसे कहू, आओ अब तुम्हें शरण दे सकता हू!

ऐसा अहंकारी हो गया था। उन दिनों की बात।

भूल-सा गया कि अनाथ हूं। कटुतम स्थितियां याद नहीं आतीं। मृणाल को याद करना जरूरी नहीं लगता। नीला को याद कर, अपनी उस निरीह स्थिति की कल्पना कर के सकोच होता। एक दुसह्य, पर मोहक स्वप्न की तरह वह याद आती। मिलने के लिए अदम्य व्याकुलता होती। लेकिन सफाई देनी होगी, यह जानता था। थी नहीं, इसलिए जा नहीं सका। सोचता, कितना कम फासला है हम दोनो के बीच। लेकिन कितना अन्तराल लिये हुए।

एक बार दूर से उसे सकुशल देख आया था। रुपयों की कमी नहीं थी। देना चाहता था। कैसे दूं, यह समझ नही पाया। हम दोनों एक दूसरे के साथ निर्वाह नहीं कर सकते, इसे मैंने अन्तत स्वीकार कर लिया था। इसलिए कोई ऐसी चेष्टा नहीं करना चाहता था, कि जीवन मे सम्बन्धित होकर कोई समस्या विराट बनकर मुझे अपने आप में समेट ले।

एक दिन एक कन्सर्ट मे स्केच बनाकर लौटा ही था। होटल का बैरा और मालिक अब सलाम करने लगे हैं। सम्भवत कुछ ही दिनों में मेरे कमरे में अलग फोन की भी व्यवस्था हो जायगी।

एक लड़का मुझे पूछता हुआ आया। उसके हाथ में एक चॉकलेट का पैकेट था। मेरे किसी कार्टून को देखकर उसके पिता को बड़ी खुशी हुई है, इसलिए उन्होंने यह भेंट भेजी है ऐसा उसने कहा। मैंने पैकेट रख लिया। सहज ही उस लड़के का स्केच बनाकर, उस पर अपने हस्ताक्षर करके उसे दे दिया।

बहुत खुश होकर वह चला गया।

थक गया था। सोना चाहता था। नींद आ नहीं रही थी। सामने दीवार पर नजर गयी। सूनी-सी लगी। आज ही नहीं, पहले भी वह ऐसी ही थी। अचानक विचार आया, मृणाल का चित्र यहा होता तो अच्छा होता।

उठा। बाहर आकर टैक्सी की। मृणाल के घर की ओर गया। अब राम वह नहीं है, जिसके प्रति सहज आकर्षण मात्र ही हो। वह अब धनवान ऐश्वर्यवान, प्रतिष्ठाप्राप्त व्यक्ति है। अब सिर्फ भावुकता की बात ही नहीं, व्यावहारिक बात भी करूंगा। व्याह का प्रस्ताव रखना भी बुरी बात नहीं। एक सीधी-सादी स्त्री के रूप में वह बुरी नहीं। बल्कि सुन्दर है, और ऐसी है कि एक आर्टिस्ट को जैसी चाहिए।

मा–अन्नपूर्णा के यहा जाने का विचार आया । पर गया नहीं । सोचा, चला आता तो मां अधिक शर्मिन्दा होने से बच जाती । कीर्ति सुनती, तो गले मे लगाकर जो कुछ हो चुका है, उसके लिए रो-धो कर मन का बोझ हलका कर लेती । लेकिन पुरानी बातें याद आये, यह ठीक नहीं लगा । इसलिए वहा नहीं जा सका ।

मृणाल के यहा भी गया नहीं । टैक्सी-ड्राइवर से कहा, चौपाटी से होता हुआ मलाबार चले । रास्ते में नीला के मकान की ओर देख गया । वह गलियारे मे खड़ी थी । देख कर जोर से चिल्लाया, 'जरा तेज चलाओ भाई । जरा तेज ।'

ड्राइवर ने टैक्सी की रफ्तार तेज कर दी । माथे पर पसीना चू आया । पोंछ कर वापस होटल चलने के लिए कहा ।

सोचा, नीला से मिल लेता, तो इतना तो कह ही देता कि 'नीला इस राम की चिन्ता से अब तुम मुक्त हो । स्वतंत्र हो, कि मै तुम्हारा आलोचक नहीं । जो चाहो, करो । चाहो तो वापस न्यूड-मोडेल बन सकती हो । वेश्यावृत्ति करोगी, तो भी तुम्हें अपमानित करने के लिए नहीं आऊगा ।' अपने सम्पूर्ण अहकार को मूर्तिमान कर, उसके सामने रख कर अप्रत्यक्ष रूप मे उसे प्रताड़ित करने की लालसा बारम्बार दिमाग में चक्कर लगा रही थी ।

होटल पहुचा तो टैक्सी का बिल चुका कर ऊपर चला गया ।

बिछौने पर लेट गया ।

अर्द्ध-निद्रित था कि होटल के बेटर ने आकर उठाया । कहा, आपसे मिलने के लिए कोई स्त्री आयी है ।

पूछा, कौन है ?

–यह तो मालूम नहीं, साहब ।

जान गया कि सोना नहीं है । मृणाल हो सकती है । पर उसका आना शुभ हो सकता है, इसमे सन्देह है । कुछ कठोर होकर बोला, कह दो, सो रहा हू । फिर कभी आये ।

वह चला गया । एक मिनिट के बाद ही वापस आकर कहने लगा उसने अपना नाम नीला बताया है । कहती है, 'थोड़ी देर मिल कर चली जाऊगी ।' ले आऊ, साहब ?

अन्तिम बात उसने कुछ इस तरह से पूछी, मानो सिफारिश कर रहा हो।

मैं अप्रतिभ-सा बैठा रहा। अपने को व्यवस्थित करते हुए कहा, 'ले आओ। आते समय दो कप चाय भी ले आना।'

नीला आयी है, यह जान कर मेरा मन-मस्तिष्क उत्तेजित-सा हो गया। अभ्यर्थना के लिए दरवाजे तक आया।

नीला को करीब से देख कर सुन्न रह गया। पीली पड़ गयी थी। दुबली हो गयी थी। देखकर डर लगता था। करुणा आती थी। लाल लफ़र ओढ़े वह आयी। लज्जा और सकोच के मारे अपराधी की तरह भौंचक्का-सा उसे देखता रहा।

वह मेरे ठीक सामने आकर खड़ी हो गयी। पूछा, राम इन्हें पहचानते हो ?

–बैठो। जानता हूं।

–दो बातें कहने आयी हूं। रहा नहीं गया, इसलिए। सुन लोगे तो चली जाऊंगी। तुम्हारे आराम में खलल नहीं डालूंगी।

–हाथ जोड़ता हूं नीला। बैठ जाओ।

–नहीं। मुझे अभी ही वापस जाना है।

उसने बाडिस के नीचे से एक लिफाफा निकाला। मेरी ओर बढ़ा कर कहने लगी, 'याद है, तुम्हारे रुपये मेरे पास रह गये थे। रख लो। यही देने आयी थी।'

मैं ठगा-सा उसकी ओर देखता रहा। भींगे कंठ से कहा, वे रुपये तो तुमने पुलिस वालों को दिये थे न ? मुझे देखने के लिए वहां जो आयी थीं।

–वह मेरा अपना स्वार्थ था। रहा नहीं गया, सो चली आयी थी। अब जानती हूं, तुम्हारे रुपये अपनी इच्छा से नहीं खर्च कर सकती। इसीलिए लौटा रही हूं। ले लोगे, तो मुझे संतोष होगा।

मैंने पूछ लिया, और ये रुपये कहां से आये ?

–यह भी पूछना चाहते हो ? जानते हुए भी, जिसे एक बार सहन करा है, उसी से कहलवाना चाहते हो ? छि छि। इतना दुख मत दो।

–नीला बहुत देर हो गयी है। हमारा अन्तराल अब स्पष्ट हो गया है। तुमने मुझे अपने पास रखना चाहा नहीं। बड़ी मुश्किल से मैंने अपने को सभाल कर ऐसा बनाया है कि अकेला, तुम्हारे बिना रह सकूं। अब यहीं रहने

दो। उन बातों को याद मत दिलाओ।

–मैं रखना नहीं चाहती राम, तो कोई आरोप नहीं लगाया जा सकता। लेकिन रखना चाहकर भी नहीं रख सकी, यही भाग्य की बात है। तभी तो तुम जेल से छूटकर मेरे पास नहीं आये।

–मैं आया था।

–और फिर लौट गये? सब जान चुकी हू। बीमार पड़कर भी तुमने मुझे नहीं बुलाया। किसी ने आग्रह किया तो उसे चुप कर दिया। ऐसे तो तुम नहीं थे। होओगे, यह कल्पना भी नहीं की थी।

–उस दिन पागल हो गया था। कारण थे, इसलिए हुआ था। मैं तुम्हारे यहा रात को उस समय पहुंचा, जब मुझे नहीं पहुचना चाहिए। मेरे अतिरिक्त और कोई वहा था। शायद दोनों में से कोई एक, मेरी उपस्थित मे नाराज होता।

–वह गलत था, यह सफाई देने नहीं आयी हू। कहने यह आयी हू, कि उस दिन रुपये नहीं मिलते, तो तुम छूटते कैसे? रिश्वत पाप है। देने और लेने वाले दोनों के लिए ही। इसीलिए तो दड भोगना पड़ा।

–नीला, मै चीख-सा उठा 'इस तरह छुड़ाने के वनिस्पत मुझे मर जाते देख लेती, तो अधिक सुख मिलता। वनिस्पत इसके कि जिन्दा रह कर वह सब देखू।'

–इसीलिए तो तुम्हारी चीज तुम्हें लौटाने आयी हू। अब कभी दुख नहीं दूगी। जो तुम चाहते थे वह हो नहीं सका। जो मैंने किया, वह तुमसे देखा नहीं गया। विधाता ही प्रतिकूल था। किसी को क्या कहू? लेकिन जो विरोध है उसे भ्रम में रख कर अपने आप पर अधिक अत्याचार अब नहीं किया जाता। सो एक बार तुम्हें देख लू, इसीलिए चली आयी।

कड़ी आवाज में उसने कहा, लो!

मंत्र-सम्मोहित से मेरे हाथ आगे बढ़ गये। लिफाफा ले लिया।

वह मुड़ कर जाने लगी, तो होश आया। दरवाजे पर दोनों हाथ फैला कर, रास्ता रोकते हुए मैंने कहा, 'नीला। यह तुम्हारा वही राम है। इसकी गलती को माफ कर दो। विधाता प्रतिकूल नहीं है, नीला। इसीलिए तो घूम-फिर कर हम उसी मंजिल पर आकर फिर मिल जाते है। अब सारी सम्भावनाए

और स्थितियां बदल गयी हैं। यदि मैंने गलती की है, मुझे मारो। पीटो। जो चाहे करो। लेकिन इस तरह छोड़कर मत जाओ।

–सोच रही थी राम, कि जो कुछ मैंने किया वह राम के लिए, अपने राम के लिए किया है, इसलिए वह पाप नहीं है। लेकिन जाना कि यह अपने लिए था, तो पश्चाताप की सीमा नहीं रही। विगत पाप इतना अधिक कुत्सित और घृणित हो गया है कि अब बर्दाश्त नहीं होता।

किस तरह नीला को रोकूं, समझ नहीं सका। हाथ फैले ही रह गये। आंखों के आंसू प्रार्थना करते रहे, 'रुक जाओ। रुक जाओ।'

उसने उसी तरह दृढ़ स्वर में कहा, रास्ता छोड़ दो।

मैंने विनती की, 'नीला नहीं। नहीं नीला। रुको।'

वह आगे बढ़ती गयी।

मैं बिखर गया। कहा, नीला तुम चली गयीं तो समझ लेना, राम की लाश पर कदम रख कर जाओगी। कसम की ही बात नहीं कह रहा हूं। एक दिन आत्महत्या की तुमने निन्दा की थी। अब जब तुम चली जाओगी तो यह मत सोचना कि मैं भावावेश का मारा बिजली के करेंट को हमेशा के लिए छू नहीं डालूंगा।

जैसे वह डर गयी हो। लेकिन उसके कदम आगे बढ़ गये।

मैं उत्तेजित-सा प्लग के पास जाकर खड़ा हो गया। कहा, 'जाओ नीला। इस राम की गलतियों को माफ करना।'

मैंने प्लग में उंगलियां डाल दीं।

जोर का झटका लगा और आल्मारी से टकरा कर नीचे गिर गया। जिन्दा था, इसीलिए देख सका कि माथे की चोट से बहने वाला खून जमीन पर फैल रहा है।

नीला दौड़ती हुई मेरे पास आयी।

लगा कि जैसे चंद सांसें और शेष हैं। कहा, जाओ नीला।

लेकिन उसका हाथ मैंने पकड़ लिया। शायद उसने समझ लिया कि उसे छोड़ नहीं सकूंगा।

उठाकर मुझे पलंग पर लिटा दिया। कहा, –राम!

हिचकियों के मध्य सम्बोधन डूब गया। मेरी छाती पर मुंह रखे वह फंस पड़ी।

बेटर इस अजीब-सी स्थिति को देख कर भी अनदेखा कर, चाय के प्याले टेबल पर रख, दरवाजा बंद कर, पर्दों को ठीक से संजोकर, चला गया।

नीला कहने लगी, 'एक बार कह दे, राम! चली जाऊं। कह दे रे कि पापिष्ठा हूं। घृणित हूं। एक बार कह दे तो।'

मैं मुग्धावस्था में इतना ही कह सका —मत जाओ, नीला, मत जाओ।

नीला बिखर गयी। उसने अपने बाल नोच डाले। छातियां पीटने लगी। धरती पर लोटने लगी। उस हाय-हाय को, उस प्रलाप को, उस करुण-क्रन्दन को सुनना कितनी भीषण यन्त्रणा थी!

वह कहती रही, 'कितने पाप किये हैं, रे राम मैंने। कितना भुगतना पड़ा। कैसे मुक्ति होगी? हाय! सब कुछ संजोकर भी कुछ नहीं पा सकी।'

'अरे, इस पापिष्ठा के लिए तू आत्महत्या करेगा? बता तो, अब जीऊं कैसे, मरूं कैसे?

अचैतन्य-सी खामोश होकर, कुछ देर तक वह उसी तरह जमीन पर पड़ी रहा। याद आया, एक दिन पुलिस के किसी सिपाही ने इसी तरह इस अबला को उठाकर फेंक दिया था। वह भी इसी राम के कारण, और आज यह पड़ी है उसी राम के यहां, उसी तरह से अपमानित, लांछित! सो भी उसी के कारण!

मैं उठा। पानी की गिलास लेकर पास गया। कहा, 'नीला, पानी पी लो। नन्हें-शिशु की भांति विस्फारित नेत्रों से मेरी ओर देखती हुई वह गट-गट पानी पी गयी।

-नीला तुम राजी हो जाओ। जैसा कहोगी, करूंगा। बता दो, तुम्हें कैसे शांति मिलेगी?

फिर रोने लगा। बोली —राम, यही तो नहीं जानती, कि अब क्या करने से शांति मिल सकेगी? सब कुछ तो करके देख लिया। अब करने को शेष रह ही क्या गया?

अपने अपराधों को याद कर, उत्तर देने लायक मेरे पास कुछ भी नहीं रहा।

पूछा, मेरे पास रह सकोगी नीला?

-नहीं राम। नहीं। अब तुम्हारे पास कैसे रहूं? चाहती थी, एक दिन तुम बड़े आदमी बनो। सो बने। भगवान ने मेरा सुन ली। अब ।

वह रुक गयी। मेरी ओर देखती हुई उसी तरह विलाप करने लगी, 'राम, तुझसे अलग कैसे रहूंगी, सो भी नहीं जानती। और पास रह सकूंगी, यह विश्वास भी नहीं होता। बता तो, मैं क्या करूं ?

–मैं बताता हूं नीला। एक दिन हम दोनों ने इस संसार को छोड़ देना चाहा था। मुझे याद है। चलो, सारे अतीत को भूल कर नये भविष्य के लिए आज हम उस गत-संकल्प को पूरा करें। नये जन्म में मेरा विश्वास है, नीला ! तुम्हीं ने तो आशावादी बना दिया है। चलो उठो। हम चलें। सच मानो नीला, मरने से मुझे डर नहीं लगता। तुम्हारे बिना जीने से डरता हूं। लेकिन तुम्हें अपने पास प्रताड़ित अवस्था में रखने का अपराध मुझसे होगा नहीं। आओ। ऐसा ही करें।

–नहीं राम। ऐसी बात भी मत सोच। तुझे अभी तक कितना कुछ करना है। खुद के लिए, अपने समाज के लिए ! तू कर सकेगा। मुझे भरोसा है। मरने की बात मत सोच रे। तेरी उमर मरने की नहीं है। मेरे सिर पर हाथ रख कर कह, फिर कभी ऐसी बात नहीं कहेगा !

उसकी बात सुनता रहा। गुत्थी का एक सुलझाव करीब आया था, सो भी छिटक कर दूर चला गया। बोला –प्रताड़ित और दुखी जीवन को खत्म कर देना भी तो जीवन के प्रति आस्था बताना है नीला !

–नहीं राम। यह नहीं। यह नहीं। यह कायरों का तर्क है। जिन्होंने इस दुनिया में जीना सीखा है, उनके मुंह से ऐसी बात शोभा नहीं देती।

मैंने कहा.—पलायन से मैं भी नफरत करता हूं नीला। पर यह पलायन नहीं। जीवन का सुखद स्व-चेष्ट अन्त है। ऐसा अवसर कितनों को मिलता है ?

–बहस मत कर राम। कैसी बात है यह तेरी ? इस जीवन से जो भागता फिरता है। वह दूसरे जीवन में कुछ पा जायगा, यह तुझसे किसने कहा ?

–तो कहो, क्या करूं !

–वचन दे, कभी ऐसी कोई हरकत नहीं करेगा ?

आत्महत्या नहीं करूंगा, यह वादा किया। कहा, 'लेकिन तुम भी मुझे छोड़कर कहीं मत जाना। देखो तो नीला, तुम्हारे आशीर्वाद से सब कुछ तो है। कहो, हां !

नीला ने आंसू पोंछ डाले। बोली, नहीं जाऊंगी राम। कहीं नहीं जाऊंगी। जा भी नहीं सकती कभी। पूर्व-जन्म के ये सम्बन्ध कोई आदमी की हस्ती मे टूट सकते हैं रे ? दुनिया के किन अज्ञात कोनों से इस विशाल रंगमंच पर आकर तुम उपस्थित हो गये। यह किसी आदमी की योजना तो नहीं थी राम। किसी दैवी संकेत से ही तो ऐसा हुआ होगा !

–कहो, कि मुझे माफ किया।

–तू किसी तरह का दुख मत कर राम। कहती हूं, कि जो कुछ हुआ, वह जरूरी था, इतने दिनों के बाद देख रही हू कि मेरे कुग्रहों मे अलग रह कर तूने कितनी उन्नति कर ली है।

निश्चय हुआ कि वह मुझे अपने आंचल की छांह में ही संभाले रहेगी।

बिना भोजन किये ही अपनी नीला की गोद में सो गया।

सुबह का सुनहला सूर्य उदित हुआ, तो लगा कि सारा कलुष धुल-पुंछ कर साफ हो गया है।

तेरह :

उस रात खूब नींद आयी। देर मे उठा। नीला स्नान कर चुकी थी। हमने साथ ही चाय पी। नीला ने कहा 'राम यह जगह मुझे पसन्द आयी। यहीं चली आऊं ? कपड़ों की एक सन्दूक और कुछ सामान ही तो है वहां। बाकी जो कुछ है, वह वहीं रहे, तो क्या बुरा है ? उस जगह से ही मुझे नफरत-सी हो गयी है। होटल वालों को तो कोई आपत्ति नहीं होगी ?'

मैंने हंस कर कहा, 'होटलवालों की बात भली कही। उन्हें तो पैसों से मतलब है। तुम्हारा राम अब गरीब नहीं है। पैसे देने में समर्थ है।

–अच्छा तो, मैं एक बार वहां जा आती हूं। शुभस्य शीघ्रम्। लेकिन वादा करो, कि डाक्टर के पास जाकर अपनी करतूत का इलाज तुरन्त करवा लोगे।

–जाऊंगा।

–तो मैं निश्चिन्त होकर चलूं ?

–आना जल्दी। निश्चिन्त तो मेरे रहते तुम हो ही नहीं सकती।

हंसती हुई वह चली गयी।

डाक्टर से पट्टी बंधवा लाया। उसने बताया, खून की गति रुक गयी है। कुछ दिन लेप लगवा कर गर्म पानी का सेक करना होगा। विशेष विवरण पूछने पर मैंने यही कहा, कि गलती से करेंट से हाथ छू गया। भला आदमी था। सहज ही मान गया।

पता नहीं यह कैसा मनोविज्ञान है, कि आइने में खुदको पट्टियों से सुसज्जित देख कर बड़ा संतोष हुआ। चाहा कि और अधिक बीमार हो जाऊं। नीला सेवा में मेरे पास ही बैठी रहे। बिछौने पर लेट गया। लगा कि मानो बुखार आ गया है। यही सोचते-सोचते सो गया। कुछ कार्टून बनाने थे। दो बार फोन भी आ चुके थे। लेकिन शरीर ठीक नहीं है, यह कह कर टाल दिया। वहम के मारे सोया तो उठा तब, जब कि वास्तव में हरारत और भारीपन महसूस होने लगा था। कुछ अच्छा-सा लगा कि नीला आते ही, देखकर कितनी चिन्ता नहीं करेगी!

कितना प्यार, कितना अमित स्नेह!

पांच बज रहे थे। डाकिये ने एक चिट्ठी ला दी। दिल्ली के एक सम्पादक महोदय का पत्र था। मेरे प्रकाशित कार्टूनों की तारीफ थी। मेरे स्वयं के कॉपी-राईट के कुछ कार्टूनों को अपने पत्र में छापने के लिए स्वीकृति मांगी थी।

उसी समय इजाजत लिख दी। उत्तर देकर नीला की प्रतीक्षा करने बैठ गया। प्रसन्नता के इस अवसर पर इस पत्र का आ जाना बहुत भला लगा। फिर मन ही मन कुछ नाराज-सा होकर लेट गया, नीला अभी तक आयी क्यों नहीं ?

सामने नजर चली गयी। दीवार आज भी हमेशा की तरह सूनी थी। मृणाल का चित्र वहां टांगने की कल्पना करने लगा। सोचा, क्या हर्ज है, यदि मृणाल के विवाह-प्रस्ताव को स्वीकार कर लूं? कोई कारण नहीं कि ऐसे मनोकूल ब्याह के लिए मैं अस्वीकृति दूं। जिस दिन ऐसा हुआ था, उस दिन बुनियाद मजबूत नहीं थी। भावुकता नहीं थी। लेकिन अब तो वह सब नहीं। स्थिति बदल गयी है। मृणाल ने सोना से सब कुछ जान लिया होगा। शराब के उस

किस्से को भी समझ गयी होगी। शायद दुखी भी हुई हो। लेकिन उस मानिनी की एक बार भी तो मैंने मनुहार नहीं की।

आज तक जो हीनावस्था महसूस कर रहा था, अब वह नहीं रही। अधिकार और उपभोग की माग स्पष्ट हो गयी है। कुछ लज्जा इसलिए अवश्य महसूस कर रहा हू कि नीला के सामने एक दिन मैंने भीष्म बनने की बात कही थी। लेकिन यह भी जानता हू, कि इस समाचार से नीला को ही सबसे अधिक प्रसन्नता होगी। इस कायरता के लिए भर्त्सना नहीं, प्रशसा ही मिलेगी।

सो, आज तक का दबा हुआ 'सेक्स' एकबारगी इस बेकदर सामने उपस्थित हो गया कि कितना ही निर्लज्ज बनने की कोशिश क्यों न करूं, उसे याद करके सकोच से गड़-सा जाता हू।

सन्ध्या होने आयी। माथा भारी था। नीला अभी तक नहीं आयी। प्रमाद गया नहीं। कुछ देर तक खिड़की के पास बैठा जिद् करके ठंडी हवा का आनन्द लेता रहा। हरारत अधिक महसूस होने लगी तो उठकर फिर बिछौने पर लेट गया। भूख नहीं थी। सो बेटर को मना कर दिया कि खाना न लाये।

उठा तो सुबह हो आयी थी। आशा थी कि नीला आ गयी होगी। शायद मुझे सोता देख, बिना जगाये नीचे ही सो गयी हो। लेकिन वहा थी नहीं। विश्वास नहीं हुआ। गुसलखाने की ओर गया, वहा भी कोई नहीं था। चिन्ता-सी हुई, अब तक क्यों नहीं आयी? कोई खास बात हुई हो तो फोन तो कर ही सकती थी।

उठने का-सा उपक्रम करते हुए वापस लेट गया। बुखार ठीक हो गया था। नहीं कह सकता, कि सचमुच बुखार आया भी था या नहीं। या वहम में ही मैंने २४ घटे गुजार दिये।

चाय पीकर, टैक्सी से नीला के घर गया। ताला लगा हुआ था। कोई नहीं था। पड़ोस में पूछने गया। उस समय सिर्फ इस बात से आश्वस्त होना चाहता था कि वह यहा नहीं है, चली गयी है। बाद में उसे खोजने के लिए सारा सम्सार को छान मारने के लिए कृतसकल्प था।

तभी सामने हुए एक वृद्ध के दर्शन हुए। नम्रता पूर्वक अभिवादन कर मैंने पूछा, 'आपके पड़ोस में नीला रहती थी। वह मकान छोड़ कर चली गया?'

प्रश्न सुनकर, निराश-सा होकर, वह वापस अपने कमरे में जाकर एक ईजी-चेयर पर बैठ गया। कहने लगा, 'कौन ? अरे वह नीला ? तुम बहुत दिनों के बाद आये हो बेटा। इतने दिन नहीं आये, यह अच्छा ही हुआ। औरत अच्छी नहीं थी। चलते-फिरते भले आदमियों पर डोरे डालना ही उसका काम था। अपने पापों का फल उसे मिल गया। रहती थी, तो बदनामी के मारे नाक में दम था। मरी भी, तो पूरी तरह तंग करके ही ?

मौत !

एकाएक नीला की मौत बिजली की तरह कौंध गयी। मेरे साथ रहने का उसने वचन दिया था। चुपचाप आकर आत्म-हत्या कर लेगी और इतनी बड़ी लाछना लेकर वह जायगी ? विश्वास नहीं हुआ। फिर भी चारों ओर फैलते जा रहे इस अंधकार को दोनों हाथों से रोकने की कोशिश करते हुए मैंने व्याकुल कंठ से पूछा, वह मर गयी ? कैसे ? क्या हुआ था ?

वह वृद्ध खाँसने लगा। दम लेकर बोला, सो क्या मैं जानता हूँ बेटा ? पुलिस वालों से जाकर पूछो। सुना है, परसों किसी से पैसे लिये थे। कल वह आया तो उसे धक्के देकर निकाल दिया। बात छिपी-छिपी चलती थी। सो खुल गयी। हम तो बदनामी के मारे सिर उठाने लायक नहीं रहे। लेकिन पाप की गठरी भारी हो गयी थी इसीलिए, सुना है, उसने उसका खून कर डाला!

नीला की मौत की बात को वह इतनी सरलता से कह गया कि क्षोभ के मारे काँपने लगा।

आगे मैंने कुछ भी नहीं सुना। जी किया कि उस बुड्ढे का गला घोट दूं। नीला को उसने वह सब कुछ कह दिया है, जो सर्व-स्रष्टा परमात्मा भी नहीं कह सकता। यदि आँखों ही आँखों से किसी को पीया जाना सम्भव होता, तो वह भस्म हो जाता। घृणा से होंठ सिकोड़ कर, अपनी हथेलियों से मुँह छिपा कर मैं धीरे-धीरे नीचे उतर आया।

वह महापात्रा चली गयी और मैं उसके अन्तिम दर्शन तक नहीं कर सका। कल दिन भर प्रमाद से रूठा हुआ बैठा, इन्तजार करता रहा!

आन्तरिक सन लज्जा और पश्चाताप से छिः छि कर उठा।

एक-बार, केवल अन्तिम बार उस महादेवी के दर्शन करने के लिए मैं अपनी दोनों आँखें भेंट चढ़ा सकता था। सिर्फ एक बार कोई उसके दर्शन करवा दे।

–लेकिन यह कैसे संभव हो ?

–पुलिस के किस आदमी से यह पूछा जाय ?

–कहाँ से उसे प्राप्त करूँ ?

–मुझे सिवाय नीला के कुछ नहीं चाहिए। मरने के लिए भी, जीने के लिए भी। केवल वही !

वह चली गयी। लेकिन वह उस तरह से नहीं जायगी, जैसा कि उस शैतान बूढ़े ने कहा था। वह जायगी, अचल सौभाग्यवती होकर मेरी बहन होकर। धूमधाम से उसकी शव–यात्रा निकलेगी। मैं उसके आगे नगाड़े बजाता हुआ चलूँगा सूचना दूँगा, यमराज को, कि तैयार रहो रे, मेरी बहन आ रही है। तुम तो घट–घट की जानते हो, नीला की हर बात को तुम जानते हो। मैं मनुष्य होकर भी उसे कुछ–कुछ समझ सका हूँ, तुम तो देवता हो। तुम उसे ऐसी मत समझना, जैसा कि वह बूढ़ा आदमी कह रहा था !

जिस जोगलेकर का मुँह देखना भी मैं पसन्द नहीं करता, उनके ही पास गया। मिल गये। अन्नपूर्णा–माँ भी थीं। मैंने उनकी ओर नहीं देखा। जानता था कि उनके कंठ से शत–शत बातें मेरे लिए फूट निकलना चाहती हैं। मैंने रोते हुए इतना ही कहा, 'नीला का किसी ने खून कर दिया। किसने किया, क्यों किया, यह नहीं जानना चाहता। उसके एक बार, अन्तिम बार दर्शन करना चाहता हूँ।'

जोगलेकर मेरे पास आये। पूरी बात पूछने लगे। हिचकियों से भरे स्वर में जो कुछ जानता था, कह गया।

सुनकर बोले, मैं तुम्हारी मदद करूँगा। आओ मेरे साथ।

मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि उनकी इस कृपा के लिए कभी भी आशीर्वाद देने को तैयार नहीं हूँ। नहीं हूँ, इसलिए कि उनके बारे में ऊँची नजर करके देखने की हिमाकत मुझमें नहीं है।

इस एक आदमी के कारण ही आज नीला इस संसार में नहीं है, कि मैं उसे एक आँख से देखने के लिए तरस कर रह जाता हूँ !

मुझे लेकर वे पुलिस कोर्ट में गये। मालूम हुआ, कि उस केस से सम्बन्धित खूनी गिरफ्तार कर लिया गया। पोस्टमार्टम हो चुका, डाक्टरी रिपोर्ट तैयार हो गयी। इसलिए आज सुबह ही लाश जला दी गयी।

अन्तिम बात सुनते-सुनते मैं चीख उठा, 'लाश जला दी गयी ? जानते हो, वह कौन थी ? कौन थी, यह मालूम है तुम्हें ! उसे जला दिया और मुझसे बिना पूछे ? अरे राक्षसों, खूनी का पता लगाना जितना जरूरी था, उससे भी अधिक जरूरी यह था कि उसके भाई का पता लगाते । पोस्टमार्टम के लिए रुका जा सकता था, तो क्या मेरे आने का इन्तजार नहीं किया जा सकता !'

जोगलेकर के साथ होने के कारण मेरी अभद्रता माफ कर दी गयी। मैं विलाप करता हुआ बाहर चला आया । जोगलेकर मेरे पास आकर मुझे पकड़ कर कहने लगे, 'राम चलो, घर चलो । जो हुआ उस पर किसी का कोई वस नहीं ।'

मैं शून्य में नजर जमाये उस महाभागा के बारे में सोच रहा था। उन्होंने जीप में मुझे बिठा दिया । बैठ गया । बड़बड़ा रहा था, 'नीला चली गयी। इस संसार को, मुझे, सबको छोड़कर ! वह जला दी गयी और मैं उसकी अन्तिम बात तक नहीं सुन सका । हाय रे दुर्भाग्य । एक सुनहला सपना कुछ करीब आया था, वह भी खंडित हो गया! और इन सब का कारण—मैं। नहीं, नहीं, मैं नहीं; यह जोगलेकर । इसी आदमी के कारण यह सब हुआ । मैंने चिल्ला कर उसका गला पकड़ कर कहा, यह सब तेरे कारण हुआ है । दुष्ट !

उसने मेरा हाथ धीरे से हटा कर अलग कर दिया । कहने लगा, 'मुझे मालूम हो जाता राम, तो चाहे जितने खर्च होते, उसकी लाश को, तुम्हारे आये बिना जलाने न देता ।'

—रुपये, रुपये, केवल रुपये ! यही है, वह चीज—जो नीला को वेश्या कहलवा सकती है । इसी से उसे खरीदा और बेचा जा सकता है। इसी के लिए उसका खून किया जा सकता है । तुम भी रुपये की बात कहते हो ? रुपये, रुपये। ये लो रुपये...लो.. कितने चाहिए !

आवेग में शायद ऐसी ही बहुत-सी बातें कह गया । जिसका कोई सिलसिला नहीं । तारतम्य नहीं । एकाएक मैं चीख पड़ा, 'ड्राइवर, रोको गाड़ी को । मैं कहता हूं, गाड़ी रोको । वर्ना मैं कूद जाऊंगा ।'

ड्राइवर अचानक के इस उपद्रव से घबड़ा गया । गाड़ी ब्रेक का धक्का खाकर एक ओर खड़ी हो गयी ।

मैं नीचे कूद पड़ा। जेब में हाथ डाला। कुछ रुपये थे। मैंने जोगलेकर की ओर फेंकते हुए कहा, 'यही वह चीज है, जो तुम सब के लिए बहुत बड़ी है।'

भागता हुआ होटल पहुंचा। अपने कमरे की आलमारी खोल कर जितना भी कुछ था, समेट कर जोगलेकर के यहां लौटा। दरवाजा खुला था। मां अन्नपूर्णा से वह बात कर रहा था। शायद मेरे ही बारे में। शायद मेरे पागलपन के बारे में।

मैंने रुपये उसके मुह पर फेंक दिये। चिल्लाया, 'यह है वह चीज, जिसने मुझसे नीला छीन ली। लो लो जितने चाहिए। लो! और चाहिए? और ला दूगा। नीच बदमाश, कायर, दुष्ट !'

और भी बहुत कुछ कहता हुआ नीचे उतर आया।

सारी बम्बई मुझे काटने के लिए दौड़ने लगी। आज मैं भीड़ में नहीं बह सकता। उसे चीर कर, उसे क्षत-विक्षत कर आगे निकल सकता हू। इसलिए भागता ही गया, भागता ही गया।

बोरी-बन्दर स्टेशन आया तो रुक गया। कोई गाड़ी छूटने वाली थी। सीटी की आवाज बाहर सुनाई दे रही थी। भागते हुए मैंने लोकल-प्लेटफार्म को पार कर छूटती हुई गाड़ी पकड़ ली। गाड़ी की रफ्तार तेज हो गयी। स्टेशन पर खड़े लोग चिन्ता की दृष्टि से हैंडल पकड़ कर लटकते हुए मुझे देख रहे थे। पायदान पर पांव लग गये। दरवाजा खोल कर अन्दर चला गया।

कौनसी गाड़ी थी, कहां जा रही थी, यह नहीं जानता। टिकट नहीं था, दिशा नहीं थी, नीला नहीं थी, कहू राम भी नहीं था।

एक बर्थ पर जाकर बैठ गया। जी किया कि डब्बे को दबा कर तोड़ डालू कि अपना सर फोड़ लू।

गाड़ी चली जा रही थी। पता नहीं किस प्रान्त, किस देश को?

—नीला के देश?

कल्पना का मधुर-सा झोंका आया, यदि वह साथ ही बैठी होती तो?

तो मुझे टिकट लेने के लिए कहती। इस समय खिड़की के पास बैठी, दौड़ते चले जा रहे दृश्यों के रूप का जिक्र करती। एक दिन कहती थी 'इसी आसमान के नीचे जो विपुल सौन्दर्य है, उसे हम दोनों साथ चल कर देखेंगे।'

आह, मन की मन में ही रह गयी।

खिड़की से बाहर की ओर देखा। प्रतिपल नवीन दृश्य क्षणिक वेग से आते और विलीन हो जाते।

खिड़की के पास नीला नहीं है। ट्रेन में नहीं। बम्बई में नहीं। अरे, इस संसार में भी नहीं!

–नीला!

मैंने माथे पर हाथ रखकर पुकारा!

गाड़ी के पहियों की आवाज में मेरी पुकार खो गयी।

किसी पुल के ऊपर से गाड़ी के गुजरने की गुरु-गम्भीर आवाज सुनाई दी। दरवाजा खोलकर नीचे की ओर देखा। अगम गहराई। कूद पड़ूं, तो इस संसार से चला जाऊं। ठीक वहीं, जहां यह गाड़ी नहीं ले जा सकती, और जहां नीला है!

मृत्यु के एक दिन पूर्व उसने कहा था, 'राम मरने की बात मत सोचना। मेरे सिर पर हाथ रख कर कसम खा कर कह, ऐसी कोई हरकत नहीं करेगा।'

मैंने स्वीकार किया था।

लेकिन कहा था, तुम्हें मेरे पास रहना होगा। उसने अपने वचन का पालन नहीं किया। नहीं कर सकी। छोड़ गयी इस राम को रीता ही रखकर। दिव्य-प्रेरणा का रूप लेकर वह आयी, और बिना किसी तरह की सूचना दिये अदृश्य हो गयी।

–कितनी विशाल थी वह! कितनी विराट!

–उस विराट में अपने को खोज सकता था। उस विशाल में मैं भी था!

–नीला! ओ नीला!!

–कहां हो तुम!

–इस वेदना-विलाप की कोई प्रतिध्वनि नहीं!

राम सीता को खोकर इतने दुखी हुए होंगे, नहीं कह सकता। राम की पीड़ा का मर्म मुझ से अभी तक अछूता है। एक-एक दृश्य में नीला की सजीवता सभ्रम उपस्थित हो जाती। लेकिन कहीं कोई नहीं! राम उस को पहचानते थे। कुंज-लताओं से, हरिण-शावकों से उन्होंने सीता का पता पूछा था, उसने सीता को देख नहीं पाये। लेकिन मैं! मुझे तो हर जगह नीला ही दिखाई दे रही है। अभिशप्त, दुखी, अपमानित, पीड़ित!

कहने वाले कहें, कि मैं राम होता तो वह सीता नहीं थी। सो मुझे ऐसा दुख है भी नहीं कि कोई उसे कहां ले गया। मुझे तो रोना इस बात का है कि उसे नष्ट कर दिया गया। तोड़ दिया गया। जहां कहीं वह रहती, सिर्फ इतना ही मुझे मालूम होता कि वह मौजूद है, सुखी है, ठीक है, तो मैं किसी के सामने वेदना विलाप करने नहीं जाता। किसी से युद्ध नहीं ठानता!

लेकिन हाय, वह चली गयी!

गाड़ी रुकी। दरवाजा खोल कर किसी ने अन्दर प्रवेश किया। नीला के आगमन का भ्रम-सा हुआ। उठ बैठा। आगत व्यक्ति का हाथ अनजाने में ही पकड़ कर मैंने पुकारा, नीला . . .!

–यह क्या है?

–नीला?

आंखें खोल कर, भ्रम के धुंध को साफ कर देखा, नीला नहीं, टिकट-चेकर था।

पूछा, टिकट?

–कौनसा टिकट? कैसा टिकट? कहां का टिकट?

–विदाउट-टिकट सफर करने की यह नयी फैशन देखी। फर्स्ट-क्लास! अच्छी बात है। पैसे निकालिये।

मैं उसकी ओर ताकता रहा। उसने हिसाब लगाकर बताया, 'सत्तर रुपये नौ आने!' पूछा, कहां जाओगे?

स्थिति समझ गया। जेब में हाथ डाला। एक रुपया पास में रह गया था। उसकी ओर बढ़ा दिया।

वह हसने लगा। मेरा विकृत मस्तिष्क भन्ना उठा। चिल्ला कर मैंने कहा, तुम्हें भी रुपये चाहिए। रुपये, रुपये। लो, यह लो।

मैंने दोनों जेबें उलट दीं। वहां कुछ भी नहीं था। लेकिन मैं विचलित नहीं हुआ। कहा, 'रुपये दूंगा। अरे, मेरी कला बिकती है। उससे पैसे बरसते हैं! कला अब जीवनोपयोगी है। 'आर्ट फोर लाइफ सेक' समझे? 'आर्ट फोर आर्ट' का जमाना गया। मैं आर्टिस्ट हूं, आर्टिस्ट!! मेरी कला राजनीति के दांव-पेंचों को सीधा तिर्छा करती है। बड़े-बड़े आदमी डरते हैं मुझसे। उस दिन चीफ मिनिस्टर ने मेरे बारे में कहा था, 'यू आर ट्र बिटर।' देखा, कितना कड़वा लगता हूं उनको? खूब कमाऊंगा। भरोसा रखो। खूब कमाऊंगा। कहोगे, उतने पैसे दूंगा"

गाड़ी चल दी।

उसने मेरी किसी बात का जवाब नहीं दिया। चुपचाप सिगरेट सुलगा कर कम्पार्टमेंट की एक बर्थ पर जम कर बैठ गया।

धीरे-धीरे मेरी बकझक कुछ कम हुई। उठकर विनीत स्वर में कहा, इस समय मेरे पास पैसे नहीं हैं। भला और ईमानदार आदमी हूं। आर्टिस्ट हूं। जहां चला जाऊंगा, पैसे मिल जायगे। कमाऊंगा, तब जरूर दूंगा। इस समय दुख मत दो। मुझे अकेले में छोड़ दो।

लेकिन वह गया नहीं। मैं झल्ला कर बोला, 'कह तो दिया कि पैसे दे दूंगा। विश्वास क्यों नहीं करते ? विश्वास न करने में नुकसान है। करने में नहीं। देखो तो अविश्वास न करता, तो नीला को इस तरह खो देता ? आज जब समझ रहा हूं, तो वह नहीं है। एक दिन तुम भी इस बात को समझ जाओगे। तब पछताओगे। मेरी तरह भटकते फिरोगे। लेकिन उस समय मैं नहीं होऊंगा।

वह मेरी ओर चुपचाप स्थिर दृष्टि से देखता रहा। मैंने थक कर कहा, अच्छी बात है, विश्वास मत करो। जो जी में आये करो।

मेरे पागलपन को देखकर वह इतना ही कर सका, कि बिना चार्ज किये ही अगली स्टेशन पर उतार दिया। बल्कि प्लेटफार्म से बाहर भी कर दिया कहा, गेट आऊट !

अनजानी स्टेशन। नाम याद नहीं आ रहा है। लेकिन ऐसा धुंधला-सा चित्र है कि स्टेशन के ठीक सामने ही तांगों का स्टेण्ड था, और बस भी वहीं खड़ी थी। स्टेशन से निकलने वाली भीड़ उनकी ओर बढ रही थी। तांगेवाले चिरौरी कर रहे थे। एक अंग्रेज परिवार ढेर सारा सामान लिये सीढ़ियों पर खड़ा था। दो चार कुली उनके इर्द-गिर्द जमा हो गये थे।

मैंने उनसे अंग्रेजी में कहा, सामान ले चलूं ?

परिवार का मुखिया मेरी ओर गौर से देखने लगा। कहा, चलो।

सामान उठाकर तांगों तक ले गया। कभी इतना वजन उठाया नहीं था। भूखा था, कमजोर भी। ईमानदारी का आग्रह था कि सामान सुरक्षित अवस्था में पहुंचा दूं। अपने तन की परवाह न करूं। पसीना निकल आया। काम सफल रहा। उन्होंने दो रुपये मजदूरी दी। अन्य कुली हुज्जत करते रहे।

मे अपना मेहनताना लेकर, विस्तीर्ण पथ की ओर देखता रहा, कि कहां आ गया हू, और कहां जाऊ ?

भीड़ मे लदी हुई बस रवाना होने लगी, तो उसमें चढ़ गया। अपनी-अपनी मंजिल तय करने के लिए, असीम कष्ट सहकर, सटे हुए सारे यात्री किसी तरह समय काट रहे थे। सौभाग्यशाली कम थे, कि जिन्हें बैठने को जगह मिल गयी थी।

मेरे पास ही एक महिला खड़ी थी। ऊपर से नीचे तक दरिद्रता की मूर्तिमान प्रतीक। गोद में एक शिशु था। श्यामवर्ण, अस्वच्छ। बुरी तरह से रो रहा था। उस भीड़ में बिना हवा, मेरा भी दम घुटा जा रहा था, फिर उस शिशु के कष्ट की सहन-सीमा की कल्पना कर सकता था। देखा, बहुत से सहयात्री बालक की इस धृष्टता के लिए उसकी मां को कोस रहे थे। लेकिन शिशु अविराम गति से प्रलाप किये जा रहा था। दुबला-पतला भी इतना, कि कौनसी सांस अन्तिम होगी, यह कहना मुश्किल था। हिन्दुस्तान है ही ऐसा देश, कि काया में कुछ न होते हुए भी आदमी जिन्दा रहता है। जल्दी ही नहीं मर जाता। यह वरदान है या अभिशाप, इसकी मीमांसा अभी तक नहीं हो सकी है। अशांत मस्तिष्क को उसकी चींचीं अच्छी नहीं लगी। सोचा अच्छा ही तो है कि यह अपने बच्चे को लेकर नीचे उतर जाय।

उसकी मां निरन्तर कोशिश कर रही थी कि वह किसी तरह खामोश हो जाय। लेकिन सब व्यर्थ। वह रोता ही रहा। तभी देखा, पास की सीट पर बैठी हुई एक स्त्री ने कहा, 'लाओ, इसे मुझे दे दो।'

शायद ही वह महिला उस स्त्री से परिचित हो। बालक को लेने का प्रलोभन हो, ऐसा आकर्षण भी नहीं था। उस बदतमीज शिशु ने हद तो तब कर दी कि कृपा करने वाली उस साफ-सुथरी महिला की गोद में जाते ही छि-छि कर दिया। दुर्गन्ध से सारा वातावरण भर-सा गया। शर्म और दुख से उसकी मां रोने को हो आयी। लेकिन देखा, उस अज्ञात-माता को, जिसने शिशु को उठाकर, उसके नीचे अपना नया चद्दर रख दिया। गंदे चद्दर को यों का यों लपेट कर एक ओर रख लिया। जैसे कोई शिकायत नहीं। कोई दुख नहीं। कोई लज्जा नहीं।

दो तीन स्टोपेज के बाद वह अज्ञात-माता, [जिनका नाम मैं नहीं जान सकूंगा, इसलिए इसी नाम से इस प्रवास-काल में सम्बोधित कर लूंगा]

उतर गयीं। बच्चे को उसकी मा ने अपनी गोद में ले लिया । उसे बैठने को जगह मिल गयी। भीड़ कम हो गयी थी। बच्चा चुप हो रहा था।

मैंने टिकट 'डायरेक्ट' लिया था। लेकिन उस अज्ञातनामा के साथ ही उतर पड़ा। कुछ देर तक उनके पीछे-पीछे चलता रहा। कुछ दुविधा-सी महसूस हुई। लेकिन निकट जाकर प्रार्थना के स्वर में कह गया, 'मा मुझे एक मिनट का समय दोगी ?'

रुक गयी। मेरी ओर देखकर पूछा, कहो ?

–बस, इसी तरह एक मिनट तक खड़ी रहिये। मैं आपका चित्र बनाना चाहता हूं। तुम मा हो, और मां ऐसी ही होती है, यह याद रखना चाहता हूं।

सहज वात्सल्य के स्वर में हंस कर पूछा, तुम चित्रकार हो ?

–हूं।

–सड़क पर ऐसा तमाशा तो अच्छा नहीं लगेगा। वे चलती-चलती कहने लगी –लेकिन यह तो बताओ इसका क्या करोगे ?

–सो तो नहीं जानता कि उसका क्या होगा ? लेकिन यह मेरी जरूरत है। यह जानता हूं। आप को एतराज न हो तो !

–आओ मेरे साथ। चित्रकारों को तो चित्र बनाने में ही सुख मिलता है। बड़े सनकी होते हैं ये सब लोग। तुम भी वैसे ही लगते हो। आओ। चित्र बनाना, प्रसाद पाना और चले जाना।

पल-भर के लिए रुक कर पूछा, कहा रहते हो ?

–बम्बई से आ रहा हूं। कहा आ गया हूं, और कहा जाऊंगा—यह नहीं जानता। सच ही कहा आपने, सनकी ही हूं। बम्बई में मन नहीं लगता, इसलिए वहा से चला आया। कहा मन लगेगा, यह नहीं मालूम।

उनका घर दूर नहीं था।

किसी मन्दिर की पुजारिणी थीं वे। मन्दिर के पास ही एक कमरा था, वही उनका निवास स्थान था। पहुचने पर जूते खोलने को कहा गया। आज्ञानुसार हाथ धोये।

बैठने के लिए आसन बिछा दिया। कहा, मेरा चित्र तो बाद में बनाना, पहले मुझे एक राधा-गोविन्द का चित्र बना दो।

–उनको तो कभी देखा नहीं। बनाऊं कैसे ? बिना जाने, बिना देखे तो मैं कुछ भी नहीं बना सकता।

–ऐसा भी कहीं होता है कि जो देखा जाय, वही सब बना दिया जाय ? जो देखा जाय वही सब पूजा जाय ? देख तो रही हू, इस बड़ी सारी दुनिया को। लेकिन पूजा तो राधा–गोविन्द की ही करती हू। लेन–देन तो इस दुनिया मे होता है। लेकिन सेवा और समर्पण तो यहीं होता है। कहो तो, जो कुछ देख लेते हो, वह सब बना डालते हो ?

–नहीं मा। वह सब तो नहीं बना पाता। लेकिन जो नहीं देखा उसे बनाने का सामर्थ्य भी मुझमें नहीं है। क्या करू ?

–यही तो कहती हू कि जो नहीं देखा है, उसे ही देखने की चेष्टा करो। तुमने जयदेव का गीत–गोविन्द पढा है ? पढे–लिखे मालूम होते हो, जरूर पढा होगा। कहोगे, वह सब मन की रसिकता मात्र है। ऐसा है। लेकिन वह सब कृष्णार्पण हो गया। इसलिए वह एक व्यक्ति की रचना होकर भी, किसी मरे हुए के खजाने की तरह दब कर खो नहीं गयी।

–जो अदृष्ट है, उसे देखने लग जाऊ—ऐसा अध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हो, यह लोभ अभी तक नहीं हुआ मा। प्रवृत्ति भी नहीं होती। अपनी सीमाओं को जानता हू। इन सीमाओं के अतिरिक्त केवल अध्यात्म ही मुझे नहीं दिखाई देता। मुझे ऐश्वर्य, कर्म और सकल्प सब कुछ दिखाई देता है। उनमें जानता हूं, न राधा है, न कृष्ण। कविता को मूर्त रूप देकर सत्य प्रमाणित करने का छल मुझमे होता नहीं। इसलिए कि मैंने राधा को कृष्ण–विहीन देखा है। कृष्ण को राधा के लिये भटकते हुए। कितनी दरिद्रता, जितना दुख, कितना अल्प, कितनी वचना इस दुनिया में है। उसे 'नहीं है' कह कर तुम्हारे गोविन्द के गुण गाने लायक बुद्धि मेरे पास नहीं है मा। फिर एक बात और भी तो है, आज तक परम्परा से उनके प्रति जो भक्ति, जो आदर प्रदर्शित किया जा रहा है, जब वह मेरे मन में उस मात्रा में नहीं है, तो गोविन्द की जगह मैं अपने बना बैठूगा। राधा की जगह मृणाल को। अथवा यशोदा नीला से अधिक सम्पन्न नहीं हो सकेगी। तब तुम लोग 'गलत है, गलत है' कहने लगोगे। इसलिए मुझे कागज पेंसिल दे दो। तुम ही जगद्जननि हो, तुम्हें ही इस रूप में देख लिया, तो समझ लेना कि परम ज्ञान मार्ग में दीक्षित हो गया।

–हरे कृष्ण। हरे कृष्ण। तुम क्या कह रहे हो बेटा, कि राधा गोविन्द यहा नहीं है ? ऐसा होता, तो यह दरिद्रता, यह अल्प–माया, यह भ्रम, इन

सबसे दुनिया निराश न हो जाती ? लेकिन आज भी वह जिन्दा है, सो इसलिए कि उसे यह सब एक दिन पाना है । लोग रास्ता नहीं जानते, तभी तो भटक रहे हैं ।

मैंने दीर्घ श्वास लेकर कहा –होगा मां । ऐसा ही होगा । अपने बारे में अब कुछ नहीं कहूंगा । तुम चाहती हो, वह बना दूंगा । तुम सुखी हो सकीं तो मैं अपने अज्ञान पर भी संतुष्ट हो लूंगा ।

–

भोजन मिला । कागज-पेंसिल भी मिल गये ।

मैं राधा-गोविन्द का चित्र बनाने बैठा ।

कल्पना करने लगा, कैसे थे गोविन्द, कैसी थी राधा !

पूछा, मां कैसी थी यशोदा, कैसा था कृष्ण ? उनका जन्म जान लूं, तो उनके प्रेम को समझने की चेष्टा करूंगा ।

वे सूरदास का एक भजन गाने लगीं । शिशु-कृष्ण मां-यशोदा से जिद्द करते हैं । रूठ जाते हैं । शैतानी करते हैं कि सजा पा जाते हैं ।

मुझे लगा कि कृष्ण–यशोदा को देखे बिना, कृष्ण-राधा को देखना सहज नहीं ।

इसलिए यशोदा कृष्ण को संजोने बैठा ।

लगभग आठ घंटे बैठा रहा । अचल समाधि इसे ही कहते होंगे । मन्दिर में पूजा करने का जिनका व्रत था वे वहां चली गयीं । मैं अपने कागज पेंसिल पर नजर टिकाये झुका बैठा रहा ।

पता नहीं कब नींद आ गयी ।

उठा, तो देखा सुबह होने आयी है । अजात–माता मन्दिर में अर्चना की तैयारी कर रहीं थीं । मैं भजनों के स्वर पहचानता हुआ उनके पास पहुंचा । कहा, यशोदा–कृष्ण वहां बैठे हैं । देखो तो वही हैं क्या, जो तुम उस दिन बता रहीं थीं ।

वे मेरे साथ आयीं । शीट खोल कर मैंने पसार दी । बाहर प्रकाश में लाकर उसे देखा । आनन्दाश्रु बहने लगे । कहने लगीं, 'अरे कलाकार, तुझे तत्त्वबोध हो गया । यही यशोदा है, यही कृष्ण ! आ, आ । यहीं हैं वे । यह भगवान का प्रसाद है, तेरी प्रतिभा सफल हो गयी रे ।'

मुझे हँसी आ गयी। कहा, मा यह तो तुम्हारा चित्रकार है। पास में जो है, वह यशोदा नहीं, नीला है।

उन्होंने जैसे सुना ही नहीं, यही कहती रहीं, तू ने कृष्ण-यशोदा को देख लिया। जयदेव के गीतगोविन्द को पूरा करने के लिए साक्षात भगवान श्री कृष्ण को आना पड़ा था। यहां भी उनकी ही चरण-रज पड़ी होगी।

उस वृद्धा का विश्वास देखता रहा। उनकी प्रसन्नता देखकर पिछले दिनों का अवसाद कुछ मध्यम हो गया। फिर आग्रह हुआ, राधा-गोविन्द भी बना दे।

मैंने कहा, यह नहीं होगा मुझसे मां! यह नहीं होगा।

डर-सा गया कि राधा कहीं मृणाल के रूप में प्रस्तुत न हो जाय। यह बुरा होगा। इसलिए टाल देना चाहा। लेकिन वे नहीं मानीं। सो दूसरे दिन उनका ही स्कैच बना कर, बिना किसी प्रकार की सूचना दिये मन्दिर छोड़ कर चला आया।

रास्ते भर यहीं सोचता रहा—नीला को नहीं भुलाया जा सकता। फिर भी लगा, कि जैसे नीला की कमी नहीं है। खोजने की आंखें होनी चाहिए। तभी तो उस वृद्धा को नीला ही यशोदा लगने लगी थी। इस मृत-लोक के एक तुच्छ प्राणी को उसने सहज ही कृष्ण मान लिया था।

उस दिन कृष्ण कहने लगा था अपने सखा अर्जुन से, कि सब जगह मैं ही तो हू। लेकिन मित्र और घनिष्ट सखा होने पर भी वह इस महान तथ्य को नहीं जान सका था, और कृष्ण की मृत्यु पर चकित-भ्रमित होकर हतप्रभ -सा हो गया था, कि जिस गाडिव की कीति से शत्रु कांप जाया करते थे, वह शिथिल हो गया और कृष्ण की पत्नियों को चोर-डाकू उठा ले गये!

मेरा तत्वबोध तो इतना प्रबल नहीं, फिर भी नीला के अभाव को सहने के लिए एकाएक जो यह नूतन भूमिका प्राप्त हो गयी थी, उसके लिए इस अज्ञात-माता का कृतज्ञ ही रहूंगा!

मैंने दोनों हाथ आसमान की ओर उठाकर कहा, तुम्हारी शरण मे हू!

लगा कि नीला ने मेरी आवाज सुन ली है!

संकल्प लिया कि अपनी नीला के शत-शत रूपों की खोज में ही अब यह जीवन बीतेगा। यही अपनी खोज होगी। यही प्रकाश की, जीवन की, और भगवान की खोज है!

—यही यात्रा, यही उद्देश्य।
—यही पंथ, यही पाथेय।
—यही प्रेरणा, यही कृतित्व!
—यही अभाव, यही पूर्ति!

चौदह :

जय की कामना, पराजय के अन्धकार में चमकती अग्नि है। लेकिन जुगनू के प्रकाश की तरह कुछ देर के लिए चमक कर अदृश्य भी हो जाती है।

जिस शुद्ध-संकल्प को लेने में परम आत्म-तृप्ति मिली थी, उसको सम्पूर्ण करने के लिए अवलम्बित मार्ग में ही कोई त्रुटि रह गयी थी तभी तो आज यह प्रायश्चित करना पड़ रहा है।

पूछता-पूछता स्टेशन आया। मास्टर से मिला। कोई मद्रासी सज्जन थे। अपना परिचय देते हुए 'कार्टूनिस्ट हूं' इसका जिक्र विशेष रूप से कर दिया। मिल कर खुशी हुई, ऐसा उन्होंने कहा।

बताया, किन्हीं खास परिस्थितियों के कारण यहां तक चला आया! वापस बम्बई जाना चाहता हूं। वहां के एक पत्र में मेरे कार्टूनों का हिसाब बाकी है। तार देकर रुपये मंगाना चाहता हूं। करीब डेढ़ रुपया मेरे पास है, इससे ज्यादा लगे, तो आप एक बार दे दें। मनी-आर्डर आते ही लौटा दूंगा।

उन्होंने मदद करना सहज ही स्वीकार कर लिया। तार दे दिया गया। कहने लगे—किसी बात का फिक्र न करें, बल्कि पैसे न भी आयें, तो बम्बई तक पहुंचाने के लिए गार्ड को कह देंगे। वे उनके दोस्त हैं, यह भी मालूम हुआ।

यह भी ठीक ही था। बम्बई पहुंचने के लिए एकाएक इतना व्यग्र हो उठा, कि महसूस होने लगा—बिना वहां पहुंचे बहुत कुछ अवांछनीय हो

जायगा। ऐसा क्या होगा, यह उस समय भी स्पष्ट नहीं था। आज भी सोच नहीं पाता हूं, कि जीवन के प्रस्तुत अध्याय को ऐसा मोड़ नहीं मिलता, तो क्या बुरा होता ?

घन्टे भर तक प्रत्युत्तर का इन्तजार करता रहा। रुपये भेजे थे। लिखा था, 'इन सौ रुपयों के अतिरिक्त जरूरत हो तो लिखिये। तुरन्त आ जाइये।'

उस पत्र का नाम यहां नहीं लिखूंगा। लेकिन उन सम्पादक महोदय की बात के साथ-साथ, स्टेशन-मास्टर, अंग्रेज, अज्ञात-माता टी टी, सबके विषय में सोच गया। क्यों ये सब मेरे प्रति इतने मेहरबान, इतने कृपालु हैं! सम्भवतः इसलिए कि इनसे जो कुछ मांगा गया, उसे देने में वे सब समर्थ थे। सम्भवतः इसलिए कि विभिन्न रूपों में हर जगह नीला उपस्थित है। सर्वत्र कृपा, स्नेह, सौन्दर्य और विश्वास मौजूद है! कहूं, यही मन के विभिन्न रूप हैं, यही नीला के विभिन्न रंग हैं—कि जब चाहूं, आंखें खोल कर देख लूं!

यह भ्रम है, या तत्वबोध ?

स्टेशन-मास्टर महोदय की नजरों में, एक तार मात्र देने से मनी-आर्डर के आ जाने पर मेरा मूल्य बढ़ गया। मैंने उनका एक स्केच तैयार किया। उस अमूल्य चीज को देना नहीं चाहता था, लेकिन वे प्रसन्न हुए, यह देखकर उन्हें दे आया।

गद्‌गद् होकर कहने लगे, बड़े भाग्य, कि आप जैसे लोगों से परिचय हुआ। बम्बई आऊं, तो याद रखियेगा।

–आयें।' न्योता दिया।

वे सी-ऑफ करने के लिए आये।

लगा कि यही प्यार है, जो नीला की आंखों में सहज रूप में ही प्रथम और अन्तिम बार बरसा था। यही है! तृष्णा से हाथ पसार दिये। वस्तुस्थिति को जानकर कम्पार्टमेन्ट में मुंह कर लिया।

एकान्त चाहता था। सैकेण्ड-क्लास का कम्पार्टमेन्ट, अकेला मैं!

कांच में मुंह देखा। लगा कि अभाव की उत्तेजित वेदना के चिह्न चेहरे पर अब नहीं हैं। कुछ दर्प, कुछ गौरव-सा महसूस हुआ।

पिछले आठ महीनों पर दृष्टि दौड़ गयी। कितना कुछ हो गया! पूर्व-चित्र की श्रृंखला समाप्त हुई; तो सुलगता प्रश्न उपस्थित हो गया, अब क्या करूं! बिना नीला के बम्बई में . . . ! कैसे यह सब संभव हो जायगा?

धीरज बधाया मन को, कि अरे, नीला की खोज निकालेगा ! हम जो पुनर्जन्म की बातें करते हैं, वह नितान्त मिथ्या थोड़े ही होंगी ' यह भी तो आशावाद है, कि आदमी मरता नहीं, जीता है। जिन्दगी मौत से बड़ी है। कि हर आदमी नाना रूपों में उपस्थित है '

कि इन में ही कहीं नीला भी मौजूद है।

वापस होटल में आया। लगा कि बहुत कुछ टूट-सा गया हूं। अपने इस खंडित रूप को देखा कि जो रक्तबीज की तरह मर कर भी जिन्दा है। समय तो लेगा ही—और समय के बीच अन्तराल भी होगा। वह चाहे जितना असह्य हो, चाहे जितना दुरूह अथवा कठोर, भोगे बिना राह नहीं।

दैनिक कर्म से निवृत्त होकर उसी अखबार के दफ्तर में पहुंचा। ऐसे नाजुक समय पर रुपये भेजने के लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद दिया। मेरे इस तरह एकाएक गायब हो जाने के प्रति उन्होंने बड़ा आश्चर्य व्यक्त किया। खासकर इसलिए कि वे अपने पत्रों के ग्रुप में मुझे स्थायी रूप से रखना चाहते हैं। इस बारे में निर्णय भी हो चुका है। तनख्वाह फिलहाल साढ़े चार सौ रुपये तय हुई है। लेकिन विचलित न होऊं, इसलिए कहा, दो चार महीनों में और भी बढ़ा दी जायगी।

रकम कम नहीं थी। फिर उनकी सज्जनता का अनुग्रह भी था। मैंने स्वीकार कर लिया।

सोचा कि प्रवाह में कुछ दिन बह लूं, तो किसी हद तक दुख से मुक्त हो जाऊंगा। तब निस्पृह-भाव से संसार के लोगों को देख सकूंगा। इस समय पूर्व-निर्णीत यात्रा के योग्य नहीं हुआ हूं। क्योंकि किसी भी स्वरूप के प्रस्तुत होते ही पाने की इच्छा होगी और नीला अब पाने की चीज नहीं। मेरे भाग्य का इतना बड़ा वरदान नहीं। वह सिर्फ दर्शनीय है। ऐसी तटस्थता के लिए समय का अन्तराल चाहिए। अच्छा ही है कि सहज ही यह अन्तराल मिल गया।

रोज सुबह निश्चित समय पर आफिस आने लगा। सम्पादक-महोदय का व्यक्तिगत प्रेम भी कम नहीं था। वे कुछ खास खबरों की कटिंगें भेज देते। उनको आधार बनाकर सन्ध्या तक नित्य एक कार्टून उन्हें दे आता।

वहां जितने दिन काम किया, उसे संक्षेप में कहूं, तो यही—कि यश मिला। ख्याति मिली। बड़े बड़े नाम वाले लोगों से सम्पर्क हुआ। आलोचक

जायगा। ऐसा क्या होगा, यह उस समय भी स्पष्ट नहीं था। आज भी सोच नहीं पाता हूं, कि जीवन के प्रस्तुत अध्याय को ऐसा मोड़ नहीं मिलता, तो क्या बुरा होता?

घन्टे भर तक प्रत्युत्तर का इन्तजार करता रहा। रुपये भेजे थे। लिखा था, 'इन सौ रुपयों के अतिरिक्त जरूरत हो तो लिखिये। तुरन्त आ जाइये।'

उस पत्र का नाम यहां नहीं लिखूंगा। लेकिन उन सम्पादक महोदय की बात के साथ-साथ, स्टेशन-मास्टर, अंग्रेज, अज्ञात-माता टी टी, सबके विषय में सोच गया। क्यों ये सब मेरे प्रति इतने मेहरबान, इतने कृपालु हैं! सम्भवतः इसलिए कि इनसे जो कुछ मांगा गया, उसे देने में वे सब समर्थ थे। सम्भवतः इसलिए कि विभिन्न रूपों में हर जगह नीला उपस्थित है। सर्वत्र कृपा, स्नेह, सौन्दर्य और विश्वास मौजूद है! कहूं, यही मन के विभिन्न रूप हैं, यही नीला के विभिन्न रंग हैं—कि जब चाहूं, आंखें खोल कर देख लूं!

यह भ्रम है, या तत्वबोध?

स्टेशन-मास्टर महोदय की नजरों में, एक तार मात्र देने में मनी-आर्डर के आ जाने पर मेरा मूल्य बढ़ गया। मैंने उनका एक स्केच तैयार किया। उस अमूल्य चीज को देना नहीं चाहता था, लेकिन वे प्रसन्न हुए, यह देखकर उन्हें दे आया।

गद्‌गद् होकर कहने लगे, बड़े भाग्य, कि आप जैसे लोगों से परिचय हुआ। बम्बई आऊं, तो याद रखियेगा।

–आयें।' न्योता दिया।

वे सी-ऑफ करने के लिए आये।

लगा कि वही प्यार है, जो नीला की आंखों में सहज रूप में ही प्रथम और अन्तिम बार बरसा था। वही हैं! तृष्णा से हाथ पसार दिये। वस्तुस्थिति को जानकर कम्पार्टमेन्ट में मुंह कर लिया।

एकान्त चाहता था। सैकेण्ड-क्लास का कम्पार्टमेन्ट, अकेला मैं!

कांच में मुंह देखा। लगा कि अभाव की उत्तेजित वेदना के चिह्न चेहरे पर अब नहीं हैं। कुछ दर्प, कुछ गौरव-सा महसूस हुआ।

पिछले आठ महीनों पर दृष्टि दौड़ गयी। कितना कुछ हो गया! पूर्व-चित्र की श्रृंखला समाप्त हुई; तो सुलगता प्रश्न उपस्थित हो गया, अब क्या करूं! बिना नीला के बम्बई में . . . ! कैसे यह सब संभव हो जायगा?

धीरज बंधाया मन को, कि अरे, नीला को खोज निकालूंगा ! हम जो पुनर्जन्म की बातें करते हैं, वह नितान्त मिथ्या थोड़े ही होंगी ! यह भी तो आशावाद है, कि आदमी मरता नहीं, जीता है। जिन्दगी मौत से बड़ी है। कि हर आदमी नाना रूपों में उपस्थित है '

कि इन में ही कहीं नीला भी मौजूद है।

वापस होटल में आया। लगा कि बहुत कुछ टूट-सा गया हूं। अपने इस खंडित रूप को देखा कि जो रक्तबीज की तरह मर कर भी जिन्दा है। समय तो लगेगा ही—और समय के बीच अन्तराल भी होगा। वह चाहे जितना असह्य हो, चाहे जितना दुरूह अथवा कठोर, भोगे बिना राह नहीं।

दैनिक कर्म से निवृत्त होकर उसी अखबार के दफ्तर में पहुंचा। ऐसे नाजुक समय पर रुपये भेजने के लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद दिया। मेरे इस तरह एकाएक गायब हो जाने के प्रति उन्होंने बड़ा आश्चर्य व्यक्त किया। खासकर इसलिए कि वे अपने पत्रों के ग्रुप में मुझे स्थायी रूप से रखना चाहते हैं। इस बारे में निर्णय भी हो चुका है। तनख्वाह फिलहाल साढ़े चार सौ रुपये तय हुई है। लेकिन विचलित न होऊं, इसलिए कहा, दो चार महीनों में और भी बढ़ा दी जायगी।

रकम कम नहीं थी। फिर उनकी सज्जनता का अनुग्रह भी था। मैंने स्वीकार कर लिया।

सोचा कि प्रवाह में कुछ दिन बह लूं, तो किसी हद तक दुख से मुक्त हो जाऊंगा। तब निस्पृह-भाव से संसार के लोगों को देख सकूंगा। इस समय पूर्व-निर्णीत यात्रा के योग्य नहीं हुआ हूं। क्योंकि किसी भी स्वरूप के प्रस्तुत होते ही पाने की इच्छा होगी और नीला अब पाने की चीज नहीं। मेरे भाग्य का इतना बड़ा वरदान नहीं। वह सिर्फ दर्शनीय है। ऐसी तटस्थता के लिए, समय का अन्तराल चाहिए। अच्छा ही है कि सहज ही यह अन्तराल मिल गया।

रोज सुबह निश्चित समय पर आफिस जाने लगा। सम्पादक-महोदय का व्यक्तिगत प्रेम भी कम नहीं था। वे कुछ खास खबरों की कटिंग भेज देते। उनको आधार बनाकर सन्ध्या तक नित्य एक कार्टून उन्हें दे आता।

वहां जितने दिन काम किया, उसे संक्षेप में कहूं, तो यही—कि यश मिला। ख्याति मिली। बड़े कहे जाने वाले लोगों से सम्पर्क हुआ। आलोचक

और प्रशंसक मिले। पैसा भी मिला। खुद सन्तुष्ट इसलिए था कि लाचार, पशु की तरह नही जी रहा हूँ। बल्कि जीने की कामना के साथ जी रहा हू।

आफिस में एक अलग चेम्बर [कमरा] मिल गया था। साफ-सुथरा। छोटा-सा। आवश्यक पुस्तकों, फोटोग्राफ्स और रिफ्रेन्स-बुक्स [संदर्भ ग्रथों] की व्यवस्था के साथ। जिन्दगी का एक ढर्रा बन गया, कि सुबह उठता हू, आफिस जाता हू, काम करता हू, और लौट आता हू। यही क्रम निश्चित हो गया। इसी में इतना समरस हो गया कि याद ही नही रहा कि इससे अधिक भी कुछ था, या हू!

जिस पत्र मे नौकरी कर रहा था। वह था—कांग्रेस का आन्तरिक हिमायती। सुना है, कांग्रेस के एक लोह-पुरुष का सरक्षण उसकी रीढ थी। पत्र सोद्देश्य था। अपने आप मे अच्छा और गठा हुआ। आजादी के बाद कांग्रेस की जितनी निन्दा हुई है, वह कभी-कभी तो औचित्य की सीमा भी पार कर गयी है। कुछ हलके दर्जे के कांग्रेसी लोगो की निन्दा इस संगठन की लाछना का कारण बन गयी। जब कि एकान्त रूप मे इसी पैमाने को सही नहीं कहा जा सकता। यहा तक कि कुछ ही दिनो के बाद ऐसा लगने लगा कि कांग्रेस ही बदनामी का प्रतीक है! इसे मै ठीक नही समझ पाया था। यहा 'ठीक' के सम्बन्ध में तुलनात्मक आधार ले रहा हू। कांग्रेस का हिमायती वह पत्र था मैं नहीं। लेकिन मै विरोधी था यह भी सच नही। कह यह रहा हू कि आजादी के एक मेरुदड लोहपुरुष का यह विचार मुझे सही ही लगा कि बम्बई जैसे शहर मे गुजराती, मराठी और अग्रेजी के मजबूत अखबार निकलने चाहिए, जो विरोधियो की चुनौतियो का माकूल जवाब दे सकें।

सस्ते होने के कारण पत्र चले भी खूब। बाद में अंग्रेजी, मराठी और गुजराती के सस्करण साथ ही निकलने लगे। तीनों सस्करणों मे मेरे कार्टून छपते। मेरे बिना कहे तनख्वाह मे ढाई-सौ रुपयों की वृद्धि हुई।

बाद मे मालूम हुआ कि लोह-पुरुष को भी मेरे कार्टून बहुत पसन्द आये। उनके सेक्रेटरी ने एक बार बधाई का पत्र भी लिखा। भारत-सरकार के एक महत्त्वपूर्ण विभाग मे वे सम्बन्धित थे। लोगों का लोह-पुरुष कहना मोलहों आने सही था। भारतीय सगठन के अपने जमाने के वे एक प्रतीक थे।

प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सारे भारत की कार्यवाहियों पर वे कड़ी नजर रखते। जो गलत है, उसे उन्होंने कभी नहीं सहा। इसलिए काम करने वालों को सजग प्रेरणा मिलती। लगता, कि हम सब उस एक व्यक्ति के कुशल-कर्म के सहयोगी है, मानों उनका गौरव हमसे सम्बन्धित हो गया हो।

जो हो, प्रसिद्धी और प्रसाद दोनों मिले। कला की सार्थकता भी इससे अधिक क्या हो सकती है, कि प्रचार के इस युग मे प्रत्येक कार्टून राजनीति के बड़े-बड़े नेताओं की तीखी आलोचना मान्य करवाने मे सहायक हो जाय। खासकर जब कार्टूनों द्वारा व्यंग्य मे कांग्रेस के महात्माओं का मजाक उड़ा दिया करता, तो मेरे प्रमुख सम्पादक महोदय बड़े खुश होते। किस पर क्या असर पड़ा, इसका विशद वर्णन करते। उसी सिलसिले मे एक बार उन्होंने कहा था कि तुम्हारे पहले कार्टून को देखकर यहां के चीफ-मिनिस्टर कहने लगे थे कि 'इट इज बिटर एण्ड टू स्ट्रोंग'।

आफिस में किसी से मेरी अधिक मेल-मुलाकात नहीं हो सकी। हास्य व्यंग्य को प्रतिदिन पेश करने वाले कार्टूनिस्ट को इतना नीरस नहीं होना चाहिए। लेकिन क्या करता, जो कुछ था, उससे अधिक हो भी नहीं सका!

एक दिन अपने चेम्बर मे बैठा काम कर रहा था। तभी रिसेप्शनिष्ट के चपरासी ने एक चिट ला दी। कोई मिलने आया था। नाम पढ़ा लिखा हुआ था--मृणाल!

कहा, यहीं भेज दो।

ब्रुश पानी मे डाल दी। स्याही की शीशी पर ढक्कन लगा दिया। बोर्ड एक ओर सरका दिया। घंटी बजा कर चपरासी से एक और कुर्सी लाने के लिए कहा।

तभी मृणाल ने दरवाजा खोल कर प्रवेश किया। बोली नहीं। सिर्फ हाथ जोड़ दिये।

मैं स्तब्ध, चकित, भ्रमित-सा उसकी ओर देखता रह गया। इतना ही कह सका, मृणाल!

नीला का अभाव एकाएक अधिक गहराई से दुख देने लगा। बैठने के लिए भी नहीं कह सका। प्रकम्पित स्वर में कहा, मृणाल नीला चली गयी।

--मां अन्नपूर्णा कह रही थीं।

–तुम उन्हें जानती हो ?

–वे मुझे जानती हैं। शायद नीला ने उन्हें बताया हो!

वह कुर्सी पर आकर चुपचाप बैठ गयी।

मैंने कहा 'मृणाल, अपने को जीतने में लगा हुआ हूं। मन के मोह को जीतने में, अज्ञान को जीतने में। कभी–कभी लगता है, कि स्वय को जीतने के लिए जो परा-शक्ति, अमानवीय शक्ति चाहिए, वह घोर एकांगी है, और मेरे पास नहीं है।'

चपरासी ने आकर पूछा, 'लंच ले आऊ ?'

हमेशा अपने कमरे में ही लंच लेता हूं। मृणाल की उपस्थिति में लूंगा या नहीं, इसीलिए उसने पूछा था। मैंने मृणाल की ओर देख कर कहा, 'ले आओ। ये भी खायेंगी।'

मृणाल सकोच करने लगी। 'नहीं-नहीं' कहती रही। मैंने कहा, आज तो साथ खाना ही होगा। कितने दिन इस तरह से अकेला बना रहू, बताओ तो ?

सोना कैसी है, मा कैसी है, अन्नपूर्णा क्या कहती हैं, उन्हें कितना दुख है, जोगलेकर महोदय भी पछता रहे हैं—यही सब वह कहती रही।

समय कैसे गुजर गया, होश ही नहीं रहा।

सम्पादक-महोदय का फोन आया, 'कार्टून तैयार हो गया ?'

कहा, मन नहीं लगता। माफ करें। अभी तक नहीं बना सका हू।

–अच्छा। अच्छा। कोई बात नहीं।

टेलीफोन रख दिया।

दस–एक मिनटों के बाद वे स्वय सशरीर हाजिर हो गये। मृणाल को मेरे पास बैठे देख, कुछ इस तरह से मुसकराये कि उनकी क्षमा स्पष्ट हो गयी। कहने लगे –'आज एक 'शो' का प्रीमीयर है। तुम्हें बड़े प्यार से बुलाया है। यह कार्ड है। टाइम पर आ सको, तो आ जाना।

मैंने पूछा, हम दोनों आ सकते हैं ?

–क्यों नहीं। जरूर। जरूर।' कहते हुए हसते–हंसते वे चले गये।

मैंने अधिकार पूर्वक कहा, सिनेमा चलना होगा मृणाल!

–नहीं। घर कह कर नहीं आयी हूं।

–सूचना दे दूं, तो चलोगी ?

–आज नहीं। फिर कभी।

–बाद की बात छोड़ो मृणाल। कौन कहां और कैसा रहेगा यह कोई नहीं कह सकता। आज जो है वही सत्य है! उसे ही भोग लेने दो।

उसने उत्तर नहीं दिया। मौन; अर्थात स्वीकृति सूचना।

फोन से उसने घर सूचना भिजवा दी। सोना थी। मैंने उसे नमस्कार करके कहा —एक दिन आकर दर्शन दे दो। बहुत कुछ बदल गया हूं। कैसा हूं, यह तो आकर सुन लो!

वादा किया कि 'आऊंगी'। आग्रह हुआ, कि मैं ही एक दिन उनके यहां चला आऊं। उसकी बात का जवाब दिये बिना ही मैंने दुहरा दिया, मृणाल देर से आये तो चिन्ता मत करना। उत्तर मिला –ठीक।

हम दोनों सिनेमा–हाल में पहुंचे। प्रीमियर में बड़े कहे जाने वाले लोगों की काफी संख्या थी। लेकिन मैं उन्हें सिनेमा से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं समझ रहा था। प्रधान सम्पादक महोदय के वहां उपस्थित रहने के कारण, लोगों से मिलने–जुलने का, अभिवादन अभ्यर्थना करने का ऐसा तांता लगा कि बारम्बार मृणाल का ख्याल आता और सोचता, यहां न आया होता तो ठीक रहता।

मेरे साथ होने के कारण कुछ महिलाएं मृणाल से भी मिलीं। वह संकोच से गड़ी जा रही थी। परिचय-विस्तार के प्रति लोगों का यह आग्रह मुझे भी बुरा लग रहा था। रिश्ते को स्पष्ट न कर पाने से कष्ट हो रहा था। डर-सा लगा, इस नवीन और अजीब स्थिति में वह क्षुब्ध न हो उठी हो।

आखिर शो शुरू हुआ। मैंने मृणाल का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा–मृणाल, नीला तो छोड़कर चली गयी। तुम मत छोड़ना।

अंधेरे में आभास हुआ कि नीला की साक्षी उसे अच्छी नहीं लगी।

मैंने कहा —एक दिन परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से विवाह का और तुमने संकेत किया था। उस पर अब विचार करता हूं, तो सोचता हूं, तुम्हारे साथ बिना सम्बद्ध हुए मुझे मुक्ति मिल नहीं सकेगी। मेरे बारे में अब भी तुम्हारा वही मन हो तो आओ, हम विवाह करने का संकल्प लें।

विवाह के प्रथम प्रस्ताव और इस दूसरे प्रस्ताव, दोनों की भूमिका अत्यन्त संक्षिप्त थी। इसीलिए अपने प्रेम के इस रूप का जिक्र करते हुए लज्जित नहीं होता, कि वचना अधिक गहरी नहीं थी।

मृणाल ने इतना ही कहा —राम, आज मैं बहुत प्रसन्न हूं।

–मैं भी मृणाल।

–अगले माह ही हम व्याह कर लेंगे। मा को बहुत संतोष होगा।' मृणाल ने भाव-विभोर होकर कहा।

–अगले माह नहीं मृणाल।' अनजाने में ही मेरा स्वर गम्भीर हो गया। कहा, 'नीला को गये अभी तो ६ माह भी पूरे नहीं हुए हैं। व्याह के आनन्द पर उसके शोक को हावी नहीं होने देना चाहता। एक न एक दिन हम विवाह करेंगे—साथ ही रहेंगे—यही निर्णय क्या कम है मृणाल? इस निर्णय के आधार पर तो मैं वीस साल और गुजार सकता हूं।

–वीस साल! लेकिन !

वह रुक गयी।

कहा—हा मृणाल एक अर्से के वाद भी यदि हमारा निर्णय अप्रभावित रहे, तभी स्थायी मिलन की सही पृष्ठभूमि तैयार हो सकेगी। इस समय तो मैं भटका हुआ हूं। मेरी वीस वर्ष की यह उम्र भी कोई उम्र है भला? कुछ दिन तो हमें रुकना ही चाहिए। और तुम भी तो अभी तक कल्पना करो मृणाल, यदि इन कुछ ही वर्षों में हम वच्चों के माता-पिता वन जाय . नहीं, नहीं, मृणाल यह सव नहीं। मां-वाप तो हमें वनना ही होगा, क्योंकि वह सात्विकता और परम-निर्माण है। लेकिन यह सव इतनी जल्द नहीं। अभी नहीं। जन्म-जन्मान्तरों का पुण्य सम्मिलित होता है, तव कहीं जाकर सयोग प्रवल हो पाता है। देखो तो, उतावल में नीला को प्राप्त करना चाहा था, तो उसे ही यहा से चले जाना पड़ा।'

मृणाल सुनती रही। कहने लगी.—मैंने तुमसे अधिकारपूर्वक आज तक कुछ नहीं मांगा, राम। कभी मागूगी भी नहीं। लेकिन सहज रूप से यदि कुछ मिल जाय तो वह मेरे लिये अप्रलोभनीय नहीं। जीवन में भटकाव को मैं गलत मानती हूं। इसलिए ससपेंस (द्विविधा) मुझे पसन्द नहीं। अपनी इस शर्त के पीछे मोहक से मोहक स्वप्न को भी मैं त्याग सकती हूं। तुम्हें पाना

ऐसे मोहक सपने-सा ही तो है। तुम जो कुछ कह रहे हो, वह शायद ठीक हो। लेकिन जो मुझे सोचना है, जिसे मैं अपने दृष्टिकोण से देख-समझ रही हूं, वह भी गलत नहीं। तुम जिस विश्वास की बात कह रहे हो, वह कैसे हो—जिसकी बुनियाद ही अविश्वास पर खड़ी है!

सुनता रहा। किंकर्तव्यविमूढ़-सा बैठा रहा।

जो कहना चाहता था, उसकी प्रतिध्वनि नहीं सुनायी दी। तर्क गलत नहीं था। लेकिन मेरी माग विवाद नहीं। कुछ और ही थी। सच कहूं, तो मुद्दे की बात यह है, कि पुरुष चाहता है कि स्त्री हर मायने में उसका अनुगमन करे। इस चाह को गलत भले कह दिया जाय, चाहे निन्दा की जाय। लेकिन इस चाह को पहचान कर स्त्री समर्पण करे, तो वह खुद को सुखी रख सकती है, पुरुष को भी। पर जिन्हें सत्य-दर्शन की लालसा है, उनका ध्येय सुख नहीं। सत्य वे पा जाते हैं, और इसके लिए पर्याप्त कष्ट भी सहते हैं। मैं तो इस समय सत्य की फिक्र में नहीं था। सुख की, सान्निध्य की चिन्ता में था।

धीरे-से कहा—मृणाल, तुम मुझसे अधिक सबल हो। अपने पर तुम्हें अधिक विश्वास है! सुरक्षा की सीमा भी तुम्हारी स्पष्ट है। तभी तो हर बाधा-व्यवधान को पहचान कर तुम उसे दूर से ही नमस्कार करने में समर्थ हो। मैं उस स्थिति में नहीं हूं। इसलिए तुम्हारे सामने पेरेलल [समानान्तर] खड़े होने का दावा भी नहीं करता। जिस समर्पण से तुम दूरदृष्टा होकर बिदा ले लेती हो, मुझे उसका आभास भी नहीं हो पाता। और तब एक दिन अघटित घट जाता है। उसका जो भी असर होता है, अथवा हो सकता है उसे सहने के अतिरिक्त मैं कुछ कर ही नहीं पाता! आज सोच रहा था कि तुमसे मिल कर बहुत सुखी हुआ हूं! लेकिन लगता है, अनजाने में ही छिपे हुए नासूर को धक्का लग गया है। सो क्षुब्ध-सा हो उठा हूं। खुद के सामने अधिक जटिल हो गया हूं। समझ नहीं पा रहा हूं। आशा करता था कि हमेशा इतना दुखी, इतना कातर, इतना लाचार नहीं रहूंगा। लेकिन देखता हूं, कि जहां था, वहीं हूं। जौ-भर भी आगे नहीं बढ़ सका हूं। प्रेम की स्थिरता पर विश्वास था। अविश्वास करके पछता रहा हूं। इसीलिए तुम्हारा आधार चाह रहा था। पता नहीं क्यों, तुमसे उम्मीद करता था कि तुम कहोगी, 'गलत जो तुम कहते

हो, वह ठीक है । वही ठीक है' । लेकिन यह सब अपने मन का भ्रम था कि तुम्हारी तस्वीर उसमें समा नहीं पाती ।'

उसने कहा —अपनी कम उम्र बता कर जो छल तुम अपने साथ कर रहे हो, उसकी वकालात किसी स्त्री के सामने शोभा नहीं देती ।

मैं चुप हो गया ।

शो खत्म हुआ ।

टैक्सी में बैठ कर मृणाल को पहुंचाने उसके घर तक गया ।

सोच रहा था, बहुत लम्बा हाथ पसारा । जहां प्राप्य अति तुच्छ है, सारी तपस्या उसके लिए थी—यह जान कर मन को चोट-सी लगी । एक दिन ऋषि रन्तिदेव ने भगवान से सारी सृष्टि का कष्ट पाने का वरदान मांगा था । यह बहुत बड़ी चीज है--ऐसा भगवान ने कहा होगा । इसके लिए प्रस्तुत तपस्या पर्याप्त नहीं । हजारों युगों से इसीलिए वह रन्तिदेव आज भी तप रहा है । जाने कब उसे वरदान मिल जाय । लेकिन जिस दिन उन्हें यह सिद्धि प्राप्त हो गयी, उस दिन सृष्टि के शेष व्यक्ति अप्रभावित नहीं रहेंगे ! मैं भी वही सब प्राप्त करना चाहता था । साधारण समाज की सारी अव्यवस्था अपने सर ओढ लेना चाहता था ! योग्य नहीं था । इसीलिए सिद्धि दूर खिसक गयी । अच्छा ही हुआ ।

आकर चाय पी जाऊं—घर पहुंचने पर उसने आग्रह किया । सोना को देखना चाहता था, इसलिए चला गया । हम दोनों मौन, एक दूसरे के प्रति अत्यधिक " शिष्ट "। व्यावहारिक । सोना देखती रही कि ये भिन्न दिशाओं के कैसे ग्रह हैं कि जरा से अर्से के मिलन के लिए जिन्दगी भर विग्रह और तूफान लिये फिरते हैं । मिलन भी सतोषदायक नहीं । अत्यन्त संक्षिप्त । कहा जाय, विद्रोह का प्रेरक ।

यही मैंने उसकी आंखों में देखा ।

मृणाल के प्रति मुझे कोई शिकायत नहीं ।

वह जहां है, ठीक है । आलोच्य कुछ भी नहीं ।

लेकिन वह मेरे लिए नहीं है ।

और मैं किसी के लिए नहीं हूं ।

अकेला !

एकान्त !

पन्द्रह :

एकाएक निर्णय ले लेना घटना की देन तो हो सकती है, लेकिन मेरी आदत ऐसी नहीं। दूर की सोचना चाहता हूं, लेकिन दूरी के बारे में निर्णय करने की ताकत का मुझ में अभाव ही है। फिर भी, किन्हीं क्षणों में कुछ निर्णय इस तरीके से ऐसे हो गये हैं कि उन पर मन-प्राण से डटा रहा हूं—ऐसी स्मृति है।

एकाएक मृणाल को प्राप्त करने के आश्वासन के लिए मैं इतना अधिक अधीर हो उठा, कि विश्वास का धागा हिलते ही अन्तरात्मा अस्थिर, अव्यवस्थित हो गया। भविष्य की आशावादी रूपरेखा धुंधली हो गयी, कि शीला को नहीं पा सका, मृणाल भी नहीं मिलेगी, तो कौन है मेरे लिये ?

हम तो चिन्मय हैं : जागृत हैं। शांत, खामोश और जड़ बन जाऊं—ऐसी कोशिश करता हूं। लेकिन अपना एकान्त, अपना एकाकी-स्वरूप अधिक स्पष्ट हो उठता है।

मैंने कोशिश की, कि दफ्तर के लोगों के साथ अधिक हिलमिल सकूं। अपने काम के अलावा रिपोर्टरों के कमरे में चला जाता। इधर-उधर की बातचीत में रस लेने की कोशिश करता। यहां सिगरेट पीने की आदत सीखी। मन को किसी फालतू के काम में लगाये रखने का यह अच्छा साधन है। लेकिन वहां देखा कि उन्हें भी मेरी जरूरत नहीं। इसलिए कि पहले-पहल तो जिज्ञासावश मेरे बारे में बहुतों ने बहुत कुछ पूछा। लेकिन मैं कुछ भी बता सकूं, ऐसा मेरे पास कुछ है—यह कभी लगा नहीं। इतिहास जो है, उसे व्यवस्थित रूप से बताऊं, इसमें संकोच होता है। इसलिए मेरा एकान्त-व्यवहार ही मुझे प्रिय लगने लगा। जैसे च्युत हो गया होऊं, काम के प्रति केन्द्रित होकर मशीनबाज की तरह सब कुछ भरने की चेष्टा करने लगा।

कुछ ही दिनों के बाद देखा कि पत्र की नीति अधिक कटु होती जा रही है। मेरे कार्टून अस्वीकृत भी होने लगे। उनके ऊपर के मौलिक

या नीचे के न्यूज-आइटम बदल दिये जाने लगे। पत्र की नीति स्थूल रूप में कार्टूनों से अधिक महत्वपूर्ण हो गयी। मैं लाचार-सा, सहे चला जा रहा था। ऊपर से नीचे तक के अधिकारी बदल दिये गये। मैं जहां था, वहीं रहा। लेकिन सोचा, एक दिन आकर कहा जाय, कि 'मि० राम, यह कुर्सी, यह चेम्बर अब आपके लिए नहीं हैं,' तो उस दिन चुपचाप चले जाने के बजाय क्या यह अच्छा नहीं है, कि अभी ही चला जाऊं।

लेकिन नये सम्पादक महोदय के आग्रह और प्रेम से जाना कि नोकरी कच्ची नहीं। मेरा महत्व कार्टूनिस्ट की तरह वैसा ही है।

अपने काम में व्यस्त बना रहा।

मृणाल दिमाग से हट भी जाती। लेकिन नीला अस्पष्ट होकर अधिक करीब चली आती। सोचता, गलती यहीं है, कि तुरन्त हर किसी से प्रभावित हो जाता हू। तब यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि किसी अन्य की भी इच्छाए, धारणाए और कल्पनाएं हो सकती हैं। वह भी उतनी ही उत्सुक और कृतसकल्प हो सकती है—उन्हें पूरा करने के लिये। मृणाल को जो कुछ कह गया हू, वह उसके लिए कहीं भुलावा साबित न हो, इसलिए एक दिन उसे पत्र लिखा। कहा, 'मृणाल, बहुत कुछ सोचा, सोचने में कष्ट हुआ, इसलिए कि सचित विश्वास का धरातल नहीं रह गया। इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हू, कि तुम्हारी विवाह करने की योजना बिलकुल सही है। लेकिन वर-पक्ष की ओर से नहीं हू। इसलिए तुम्हारी स्वतन्त्रता को तुम्हारे ही हाथों सौप कर तुम्हें विवाहित देखना चाहता हू। इससे शायद मुझे सुख और शांति मिले। यदि तुम्हें ऐसा अवसर मिल रहा हो, मिल सकता हो, तो मेरा आग्रह है कि तुम उसे स्वीकार करना।

साथ ही एक पत्र सोना को लिखा, कि मिलना चाहता हू।

तभी एक दिन अचानक समाचार प्रकाशित हुआ कि लोह-पुरुष की मृत्यु हो गयी। मुझे उस दिन बड़ा दुख हुआ। भारतीय राजनीति के वे एक सिंह-पुरुष थे। उनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय था। कर्म उसके प्रमाण थे। इस मृत्यु का गहरा असर कांग्रेस पर पड़ा। हमारे पत्र भी अप्रभावित नहीं रहे। धीरे-धीरे मालूम हो गया कि मराठी अखबार पहले बन्द कर दिया जायगा। एक दिन यह भी घोषित हो गया कि मराठी के अतिरिक्त अंग्रेजी

और गुजराती प्रकाशन भी स्थगित कर दिये गये है।

मुझे अपना हिसाब मिल गया। कुछ बैंक मे जमा था। कुछ और मिल गया। काफी दिनों तक जीवन–निर्वाह के सम्बन्ध में चिन्ता करने की बात नहीं थी।

लेकिन नये सिरे से जीवन-निर्वाह के लिए कोशिश तो करनी ही होगी, ऐसा लगने लगा। एक ही उपाय था, कि किसी दूसरे अखबार के सामने, प्राप्त कीर्ति की दुहाई देकर नौकरी की माग करूं। अन्य समाचार-पत्रों मे जान-पहचान, आदर-स्वागत सब कुछ था। लेकिन बहुत जल्द मालूम हो गया कि उनके विरोधी पत्र का कार्टूनिस्ट उनके लिये उपयोगी नहीं हो सकता।

इस तथ्य की जानकारी के बाद मैंने भटकना बन्द कर दिया। मन पर अजीब और व्यर्थ-सा आघात लग गया। उसे भूलने के लिए कहीं बाहर चला जाना चाहता था।

राजनीतिक पीडितों के लिए यही एक औषधि है।

फिर अकेलापन, और अपनी होटल का एकान्त कमरा।

हाथ में जलती हुई सिगरेट, चारो ओर पसरा हुआ किताबों का ढेर।

सोना नहीं आयी। मृणाल ने भी कोई जवाब नहीं दिया।

उन दिनों की मानसिक अवस्था का जिक्र करना लक्ष नहीं है। करूंगा इसलिए नहीं। इतना ही कहूंगा कि प्रमाद, आलस्य एव निष्क्रियता के साथ वे दिन बह गये।

एक दिन अचानक ही मैट्रो–सिनेमा के गेट पर सोना मिल गयी।

अभिवादन के बाद हस कर कहा –ऐसे निकम्मे आदमी की सुध लेना सचमुच व्यर्थ ही तो है!

लज्जित-सी होकर कहने लगी, 'नहीं, ऐसी बात तो नहीं! सोचा कि अब सोना को याद करने की रास को जरूरत नहीं रही। सो ख्वामख्वाह तकलीफ नहीं दी। तुम फोन करते, बुलाते न आती तो शिकायत कर सकते थे।'

–चिट्ठी तो लिखी ही थी।

–चिट्ठी?

–हा। खत।

होटल आ गया, तो ऊपर चले गये। सोना के लिए चाय मंगवायी। आराम से बैठ कर, इजाजत मांग कर कि उसकी उपस्थिति में सिगरेट पी सकता हूं, और स्वीकृति पाकर, सुलगा कर कहा—सोना, सफलता और असफलता किसी की श्रेष्ठता का मापदंड नहीं हो जाता। आज कांग्रेस असफल है, ऐसा कहने वालों की कमी नहीं। मैं इनकार नहीं कर सकूंगा। लेकिन इस का यह अर्थ लगाना नितान्त मिथ्या है कि वह कभी ईमानदार संस्था रही ही नहीं।

'जो हो, बात यह है सोना—कि राजनीतिक, पीड़ितों में मेरा भी नाम समझ लो। अब सीधी-सादी जिन्दगी गुजारना चाहता हूं। इतना तो पैसा पास में है ही कि कुछ दिनों तक काम-धाम की चिन्ता न करूं और जीवन में रस न हो, तो भी जीया तो जा ही सकता है। पर इस वैराग्य का आगामी रूपान्तर कैसा होगा, यह ठीक से नहीं जानता।

एकाएक सिगरेट को पैरों तले कुचल कर, मानों इन सारे पचड़ों से भाग कर त्राण पाना चाहता हूं, कह बैठा—'सोना, शादी करना चाहता हूं! किसी साधारण लड़की से, जो कला-वला न जानती हो। अशिक्षित हो। रूपहीना हो, और भी चाहे जो हो, मगर ऐसी हो, जो मुझे संभाल सके। जैसे शान्तनु से गंगा ने वचन ले लिया था, वैसे ही मुझसे कोई सवाल न पूछे। क्या करता हूं, क्यों करता हूं, इसकी किफायत न मांगे। है कोई? कहो, हो सकती है, ऐसी कोई वधु?'

—ऐसी मृणाल तो नहीं है।

—सो जानता हूं।

मैंने गौर से सोना की ओर देखकर पूछा—'सोना, सच बताओ, तुम मेरी व्यथा को समझ सकती हो। तुम्हें भी तो किसी एक की मौत का भयंकर सदमा लगा है। क्या तुम जीवन भर उसी दुख से दुखी रहोगी? यही आत्महनन प्रेम होगा?

—आजकल मैंने वापस कालेज ज्योइन कर लिया है। मेडिकल-लाइन ली है। डाक्टर होना चाहती हूं। जानती हूं जो गया, वह लौट कर नहीं आयगा। लेकिन किसी अन्य को बर्दाश्त कर सकूंगी, इसमें सन्देह है। इस सम्बन्ध में अतिरिक्त सोचा भी नहीं जाता।

—ठीक यही बात तो मेरे साथ हुई है सोना। नीला चली गयी तो कितना ही रोऊं, बिलखूं, अभाव, और आवश्यकता महसूस करूं· वह नहीं मिल सकेगी। तुम जिस तरह से अपने मन को भुलावा देना चाहती हो, उसी तरह मैंने सर्विस करने के बाद अपने को देना चाहा था। लेकिन हुआ यह, कि अग्नि-परीक्षा शेष नहीं हुई और अभी भी तप रहा हूं।

—राम, कृपा करो। इस विषय को इस तरह से मत छेड़ो, कि मेरा जिक्र आ जाय। अपने बारे में विशेष सोचने में मुझे कष्ट होता है। बहुत अधिक। सहा नहीं जाता। इतना।

चुप हो गया। सिगरेट फूंकता रहा।

सोना ने पूछा —जाऊं?

कह दिया —अच्छा।

वह चली गयी। नीचे तक पहुंचा आया।

मन की प्यास आज फिर नंगी हो गयी। किसी को स्थायी रूप से पाने के लिए व्याकुल हो उठा। मृणाल को अस्वीकार करने का कारण खोजता हूं, तो कभी-कभी लगता है, कि केवल विग्रह की ही बात नहीं है। पराजय की भी बात थी। उससे डरता था, इसीलिए भावावेश के उच्चतम उफान के करीब जाकर भी उसके स्पर्श से बचकर चला आया था।

कार्टूनों की कटिंग्स, फाइलस और नाना प्रकार के पत्र-व्यवहार को देख कर अरुचि-सी हुई। सारा सामान एक जगह एकत्रित किया। जो कार्टून्स बड़े उत्साह तथा प्रेम के साथ मैंने संजो-सम्भाल कर रखे थे, नीचे सड़क पर उड़ा दिये। जिन्हें गली के बच्चे उठा ले गये। ब्रश, बोर्ड, पेंसिलें किताबें सब कुछ मुझे व्यर्थ-सी लगने लगीं। सब कुछ इधर-उधर बांट दी। कलाकार बनने का जो अहंकार था, जैसे उसे तिरोहित कर रहा हूं। अपनी इस एक मात्र वस्तु की अन्त्येष्टि-क्रिया करते समय कलेजा मुंह को आ रहा था, लेकिन इस अन्तिम बन्धन से मुक्त होने के लिए अपने आप को तान खींच कर तैयार कर लिया था।

सोना ने जिस प्रश्न को टाल दिया था, उसे मैंने भी टाल दिया। सोचा, कि माँ-अन्नपूर्णा और नीला के सामने अखण्ड ब्रह्मचर्य की जो प्रतिज्ञा कर गया हूं, उसे निभाऊंगा। सचमुच मुझ जैसे अस्थिर आदमी को पत्नी पाने का

अधिकार नहीं। इसलिए इसे त्याग नहीं कहूंगा, कहूंगा कि जो सत्य था, जो प्रस्तुत था, उसे स्वीकार करने में जो देर की थी, उसका प्रायश्चित हो गया।

सोचा, अभी भी भारत में सन्यासियों के प्रति आस्था है। निर्बन्ध, मुक्त होकर इस दुनिया को देखूंगा। देखूंगा, कि कितने श्रेष्ठ पात्र समार में आज भी मौजूद हैं। दर्शन की इस प्राप्ति से संतुष्ट हो सकूंगा, ऐसा विश्वास हो आया था। इसके अतिरिक्त कोई चारा भी नहीं दिखायी दे रहा था। सो इस मार्ग को विवशता का एकान्त–मार्ग भी कह सकता हू।

नहीं जानता कि अप्रत्यक्ष रूप से आत्मघात करने जा रहा था, या प्रत्यक्ष रूप मे मुक्तिबोध हो गया था। योजनाबद्ध मुझसे कुछ हो नहीं सकेगा, बिना योजना के जो हो सकता हो, उसे मुक्त रूप मे स्वीकार करने का व्रत लेना ही मेरे लिए सुखदायक होगा, यही निष्कर्ष–सा लगा। सूर्य तपता है, उससे अन्धकार भाग जाता है। लेकिन बेचारे सूरज ने तो कभी अन्धकार को देखा नहीं। अनजाने में जो कुछ कर सकता है, उसे वह अपनी पूरी सामर्थ्य के साथ करता है। जान कर जो किया जा सकता है, वह करके मैंने देख लिया। जो कुछ कर चुका था यद्यपि वह इतना पर्याप्त नहीं था, कि प्रयत्नों के भावी स्वरूप के बारे मे इतना उदासीन हो जाऊ। लेकिन उस मनःस्थिति में सम्भवतः यही स्वाभाविक था। सो इस तरह, मेरे इस संन्यास मे जिसे लाभ मिल सके, मिले। न मिल सके, तो मेरी चिन्ताए अत्यन्त सक्षिप्त हैं।

गेरुवे वस्त्र तो धारण नहीं कर सका। लेकिन मोह मे मुक्त आदमी संन्यासी के अतिरिक्त क्या हो सकता है? 'धारण करना' तो सन्यासी की भाषा में ही नहीं। संन्यासी का तो अर्थ ही है—'न लेना।' इसलिए अपने इस स्वय–भू वेष पर प्रसन्न होकर, एक दिन होटल का कमरा छोड़कर बाहर निकल आया। सोचा, अब यहा नहीं लौटूंगा।

इस सन्यास मे अनन्त शक्ति–शाली परमात्मा के दर्शन का उद्देश्य नहीं बना सका। एक विराट मोह अब भी शेष था। स्वय–धर्म का मूल भी वही है, इसलिए छोड़ना कैसे? परमात्मा की महिमा भी इस कामना के पीछे हल्की पड़ जाती है। नील्या के विभिन्न स्वरूपों के दर्शन करने वाला यात्री परमात्मा मे अटक कर घाटे मे रहेगा, सो मृत–लोक के इस सुन्दर स्वरूप को देखने के लिए ही मैंने यात्रा शुरू की थी। **कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन** ! मै तो सम्प्रति कर्म का भान और उसका अहंकार भी छोड़ रहा हू।

सोलह :

दृढ़ता-पूर्वक सब कुछ भूल गया। व्यतीत से परे भविष्य को देख सकू, यह कामना थी।

होटल से बाहर निकला, तो अनजाने में ही मृणाल के घर की ओर चला गया। मन की अतल गहराइयों का न जाने कौनसा निर्देशन था, कि सारे बन्धनों से मुक्त होने वाले इस राम के कदम बिलकुल लाचार होकर पिंगला के घर की ओर चल पड़े! कि अन्तिम लालसा शेष रह गयी—कि उसे दूसरा सम्बोधन दे, विरक्ति को स्पष्ट कर, योगी हो जाऊं!

दरवाजे के करीब आते-आते पैर जड़ हो गये, कि आगे नहीं बढ़ सका। इच्छा मर गयी। शक्ति शेष हो गयी। दुखी होकर सोचा, कि अरे! यही माया मोह का बन्धनमोचन है? लौटने के लिए मुड़ा। लेकिन वास्तव में निराशा का कारण था, उस मकान की सजावट। उस आलीशान इमारत का शृंगार, और वहां की चहल-पहल।

पता नहीं किस काम से सोना बाहर निकल आयी। मुझे देखा, तो कुछ आश्चर्य-सा हुआ। बोली, 'अरे राम! तुम? अन्दर क्यों नहीं आये? तुम्हें निमन्त्रण-पत्र नहीं मिला? मृणाल का ब्याह हो रहा है!'

अन्तिम बात सुनकर आंखों में पानी भर आया। कहा —इसीलिए तो आया था। कोई उपहार नहीं दे सका तो मुझे बड़ा दुख होगा सोना। और वही भूल आया हू। कुछ न कुछ लेकर जरूर आऊंगा। चलता हूं। जल्दी ही आऊंगा। तुम तो रहोगी न?

कहने लगी, 'जीजी से मिल लोगे तो कोई पाप तो नहीं हो जायगा, राम। अब तो निष्ठुरता और रूठने का वह सिलसिला भी समाप्त हो गया। अन्त के समय तो कोई किसी तरह का विग्रह नहीं करता।

कहा —विग्रह मैं भी नहीं करता सोना। आऊंगा। जरूर आऊंगा। मृणाल को आशीष नहीं दे सका, तो जीवन भर पछतावा रह जायगा। इस कायाकल्प के समय पछतावे को साथ लिये चलना नहीं चाहता। और ब्याह हो तो कन्याओं के लिए सौभाग्य का एकमात्र शुभ दिन होता है।

शायद उसने मेरे आंसुओं को देख लिया। शायद न देखा हो । लेकिन मुझे करुणा का, दया का सामना नहीं करना पड़ा । मुड़ कर लौट पड़ा, तो उसने आग्रह नहीं किया।

वापस होटल आया। जहां न आने का संकल्प ले कर चला था, वहीं लौट कर जाने में सकोच हो रहा था। लेकिन अन्तिम वार यदि वहां न जा सकता तो बाद में जो दिव्य तत्व-बोध हुआ, वह नहीं होता । शुद्ध रूप से कला का अन्तिम कृतित्व मृणाल को भेंट करू, यही कामना, यही इच्छा थी, जिसके कारण चिन्तन का निश्कर्ष वैराग्य भी मुझे यहां तक लौटा लाया था।

क्या वनाऊ? अन्तिम रचना। अन्तिम कृतित्व? व्यक्तित्व की अन्तिम देन!

वह तो शुद्ध, निर्लिप्त और निष्णात होनी चाहिए।

आज नीला होती, तो अपने मौन दुख को उसकी गोद मे उड़ेल देता। वह होती तो शायद मेरा दुख इतना खामोश भी नहीं होता। उस दिन नीला कह रही थी कि भावनाओं का ऊफान कलाकार की विशेषता नहीं, उस ज्वार की स्थिरता और उसका प्रत्यावर्तन कला की सबसे बड़ी देन है। उस शक्ति को पाना ही कला की सार्थकता है।

इसलिए आज जब भावनाओं के ऊफान को स्थिरता प्राप्त हो गयी है, तो उसको अकारथ नहीं जाने दूगा। अन्तिम कृतित्व अपने आप में फिर सम्पूर्ण क्यों नहीं होगा?

कागज पर मन की घनीभूत रेखाए खेलने लगीं।

ससार की श्रेष्ठ कला-कृतियों में से वह एक थी।

–अनिंद्य सुन्दरी, परम पवित्र, महापात्रा, महायोगी, नीला!

–इस राम की नीला! दिवगत! शेष स्मृति का संचित स्वरूप!

वह चित्र मेरी चिर-सरक्षित भावनाओं का प्रतीक था। लोग तो कलाकार के एक क्षण के भाव को भी अमूल्य कहते हैं। और मेरा यह युग-युग से सचित भाव, आज कागज पर सचेष्ट प्राण पड़ा था।

सतोष की अन्तिम सांस ली। अब प्रत्यक्ष कृतित्व का ऐसा सुख फिर कभी प्राप्त नहीं होगा।

रात भर उस तस्वीर को देखता रहा। रोता रहा!

–अरे, मन के तुच्छ राग के सम्मुख इस दिव्य कृति को समर्पित कर देना होगा?

—चलो अच्छा है, मोह का यह अन्तिम पर्दा भी नष्ट हो जाय।

—संन्यासी का यह अन्तिम कर्मबन्धन, अन्तिम अर्थ-बन्धन भी समाप्त हो जाय कि कुछ भी शेष न रहे।

—मृणाल को भी यह अन्तिम उपहार भेंट चढ़ा दूं, कि प्रेम भ्रम-मात्र भी बाकी न रह जाय।

किसी से कोई अपेक्षा नहीं।

—यह जीवन, यह कला, यह मोह, यह सौन्दर्य, सब आज के बाद मेरे नहीं रहेंगे।

—परिचय, अपरिचय, प्रेम और अलगाव सब कुछ नीला की इसी गूढ़ भावाभिव्यक्ति में केन्द्रीभूत हैं। एक अर्से के बाद उसे प्रत्यक्ष रूप देकर पा सका हूं। उसे ही स्वेच्छा के साथ भेंट चढा कर अन्तिम श्रद्धांजलि अपने कलाकार के शव पर चढ़ा दूं।

लेकिन याद आया, मृणाल को इस चित्र का भेंट देना, क्या अनजाने में कोई गुनाह नहीं हो जायगा? कि जीवन के लम्बे-चौड़े इतिहास में छिपे हुए इस दुखान्त अध्याय को उनके सामने हमेशा के लिए रखने का आग्रह करे?

इसलिए मृणाल के घर के पास आते-आते भेंट देने का उत्साह समाप्त हो गया। कहूं, कि अन्तिम अहंकार शेष हो गया।

पेन्टिंग लिये-लिये नीला के मकान के सामने आया। सामने अनन्त समुद्र लहरा रहा था। उस घर में अब कुछ भी नहीं है। नीला के बिना वहां जाना प्रवंचना है। छल है। अधिक नहीं करूंगा।

समुद्र के किनारे लोगों की भीड़ आमोद-प्रमोद में मग्न है!

चित्र के सहित समुद्र में उतर पड़ा।

बढ़ता गया। पानी घुटनों तक आ गया।

आगे बढ़ा। सीने तक।

और आगे—गले तक!

चित्र के दोनों हाथों से सिर के ऊपर थामे हुए था। अब उसे समुद्र में छोड़ दिया। समुद्र की विराट तरंगों में वह नीलिमा अन्तर्धान हो गया।

भीगे कपड़ों बाहर निकल आया। देखा समुद्र अब भी लहरा रहा है। नीला का चित्र उस नील-वर्णीय समुद्र में विलीन हो गया है।

उस स्थान पर टकटकी लगाये देखता रहा, जहां वह डूब गया था।

लगा कि नीला वहां नजर आ रही है। कह रही है, 'राम, इतनी जल्दी रोने लगोगे ? हार जाओगे ?'

भीगे हुए कुर्ते की बांह से आसू पोंछे।

फुसफुसाया—क्या कहूं नीला ?

कोई उत्तर नहीं मिला। प्रश्न प्रतिध्वनित होता रहा।

सन्नह :

विराट जनरव में अपने को खो बैठा, तो लगा कि उत्साह शेष है, आशा जीवित है।

निराशा ढल चुकी है।

कदम आगे बढ गये।

कि आज वहां पहुंच गया हूं, जहां सोना नहीं है, मृणाल नहीं है, व्यक्तिगत रूप से सलग्न कोई नहीं है।

नीला की स्मृति शेष है, उसके रेखा-चित्र को विराट जन-मन के सामने उपस्थित करने में असमर्थ था, सो किसी एक को भेंट देकर मैंने अपने साथ विश्वासघात नहीं किया। अक्षर-चित्र के इस कृतित्व के प्रति लोगों की आस्था होगी, प्यार होगा, यही सोचकर इसे प्रस्तुत कर रहा हू।

इस रेखा-चित्र के अन्तिम अध्याय में और आरम्भ के प्रथम अक्षर में नीला को सम्बोधित कर इतना ही कहना है **–त्वदीयम् वस्तु गोविन्दम् तुभ्यमेव समर्पयेत।**

मन दुखी है, इसलिए अन्तिम बात इतनी ही कहनी है, उस अजान-देश-वासिनी एव अजान-रूपा नीला से—कि तुम्हारा यह राम पलायनवादी नहीं हुआ है। निराश नहीं हुआ है। वह तुम्हारी धारणाओं के अनुकूल है, इस कृतित्व पर विश्वास करना।

oooooooo oo

इति शुभ श्री :